Bharat BoudhIKS

खंड-14

भारतीय आर्थिक चिन्तन

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

Scanned with OKEN Scanner

सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- Dr. Meenakshi Sharma
  ACBR, University of Delhi
- Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary
  Rajdhani College, University of Delhi
- Dr. Shobhita Singal
  MLNC, University of Delhi
- Dr. Deepak Kumar
  DRC, University of Delhi
- Ms. Prakshi Soni
  University of Delhi
- Mr. Jitender Kumar
  University of Delhi
- Ms. Kajal Sharma
  University of Delhi
- Ms. Geeta Chaudhary
  University of Delhi
- Mr. Pradeep K. Pandey
  University of Delhi

भारतीय आर्थिक चिंतन

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : भारतीय आर्थिक चिंतन

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-45-1

मूल्य : 240/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।

2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा
अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना 9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान 11

1. भूमिका 13
2. ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य 16
3. प्रमुख आर्थिक ग्रंथ और विचारक 20
4. भारतीय अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रणाली का संचालन 44
5. आर्थिक प्रणाली की प्रमुख गतिविधियाँ 45
6. प्राचीन भारत में मुद्रा प्रणाली : एक समग्र अवलोकन 47
7. आधुनिक विश्व में प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता 49
8. वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन: नवाचार और वैश्विक नेतृत्व 53
9. निष्कर्ष 56

अनुशंसित पठन सामग्री 57
बहु विकल्पीय प्रश्न 59
उत्तर-दर्शिका 79

Scanned with OKEN Scanner

The history of India for many centuries had been happier, less fierce, and more dreamlike than any other history. In these favorable conditions, they built a character -meditative and peaceful and -a nation of philosophers such as could nowhere have existed except in India.

Source: The Outline of History by H. G. Wells

H.G. Wells

Eminent English prolific novelist, journalist, sociologist and philosopher, who was fluent in many genres. His early specialisation was in Biology, and his thinking was woven mainly around a Darwinian context. Wells is best known for his science fictions, and the most noted works include The Time Machine, The Island of Doctor Moreau, The Invisible Man and The War of the Worlds. He was nominated for the Nobel Prize in Literature four times.

Mankind's origins can be traced to India, where the human mind got the first shapes of wisdom and virtue with a simplicity, strength and sublimity which has frankly spoken, nothing, nothing at all equivalent in our philosophical, cold European world.

Source: Sacred Jewels of Yoga, by Dave DeLuca

Johann Gottfried Herder

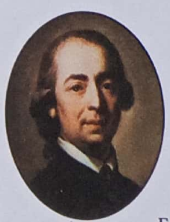

Great German philosopher, theologian, poet and literary critic. Herder was one of the first to argue that language contributes to shaping the pattern of which a community thinks. Also, he expressed ideas of patriotism and nationality in his works. Extremely inspired by Indian wisdom, works of Kalidasa in particular, his later literary works influenced L'udovit Stur, F. Hegel, Wilhelm Dilthey, Friederich Nietzsche, Johann Goethe, August Schlegel, Friederich Schlegel, Wilhelm von Humboldt, J.S. Mill, Franz Boas.

प्रस्तावना

प्राचीन भारत का आर्थिक चिन्तन वैश्विक आर्थिक विचारों के इतिहास में एक समृद्ध और विशिष्ट परंपरा प्रस्तुत करता है। जहाँ आधुनिक आर्थिक सिद्धांत प्रायः मात्रात्मक विश्लेषण और लाभ-केंद्रित मॉडल को प्राथमिकता देते हैं, वहीं भारतीय परंपरा ने अर्थनीति को एक व्यापक नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना। यह पुस्तक उन्हीं शास्त्रों की गहन विवेचना का परिणाम है—जैसे वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, बौद्ध-जैन धर्मग्रंथ तथा शुक्रनीति और शुकर नीतिसार जैसे ग्रंथ। प्रत्येक अध्याय प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन के उद्देश्य और उत्तरदायित्व की गहरी समझ को प्रतिबिंबित करता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन का मूल उद्देश्य केवल संपत्ति का संचय नहीं, बल्कि उसके धर्मसम्मत अर्जन, नैतिक उपयोग और समाज कल्याण हेतु वितरण में निहित था। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों की अवधारणा इस समग्र दृष्टिकोण का आधार है, जिसके अंतर्गत धन की प्राप्ति और उपभोग को संतुलित किया गया। आर्थिक गतिविधियों का लक्ष्य लोकसंग्रह – अर्थात् सम्पूर्ण समाज का कल्याण – था, न कि केवल व्यक्तिगत लाभ।

इस पुस्तक में वर्णित है कि कृषि, शिल्प-उद्योग, व्यापार तंत्र और मौद्रिक व्यवस्था किस प्रकार वैज्ञानिक और नैतिक ढांचे में संगठित थे। सिंचाई, मुद्रा निर्माण, मजदूरी निर्धारण और निष्पक्ष व्यापार जैसे क्षेत्रों में राज्य की निगरानी भूमिका को भी स्पष्ट किया गया है। साथ ही, कारीगरों, व्यापारियों, श्रमिकों और प्रशासकों के योगदान को भी समुचित स्थान दिया गया है। विशेष रूप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र – जो भारतीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था का मूल स्तम्भ है – एक सुव्यवस्थित, प्रशासकीय दृष्टि से कुशल और नैतिकता से युक्त आर्थिक प्रणाली को प्रस्तुत करता है।

यह ग्रंथ पाठकों को प्राचीन भारतीय आर्थिक सिद्धांतों की निरंतरता, विविधता और आज के संदर्भ में प्रासंगिकता का बोध कराता है। आज जब विश्व असमानता,

Scanned with OKEN Scanner

पर्यावरणीय संकट और पूँजीवाद की नैतिक शून्यता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब भारत के पारंपरिक दृष्टिकोण समावेशी, टिकाऊ और मूल्य-आधारित अर्थनीति की दिशा में मार्गदर्शन कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्राचीन और आधुनिक के बीच एक सेतु के रूप में प्रस्तुत है — कोई मात्र स्मृतिचिन्ह नहीं, बल्कि ऐसी जीवन-दृष्टि का पुनर्पाठ, जो शासन, नैतिकता और सामाजिक कल्याण को समेकित करते हुए भारत की सांस्कृतिक चेतना में गहराई से निहित है।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय आर्थिक चिन्तन

1. भूमिका

अर्थशास्त्र का अध्ययन अपने व्यापकतम रूप में इस बात से संबंधित है कि मानव समाज किस प्रकार संसाधनों का प्रबंधन करता है, वस्तुओं का उत्पादन करता है और संपत्ति का वितरण करता है। यद्यपि आधुनिक आर्थिक सिद्धांतों की उत्पत्ति सामान्यतः ऐडम स्मिथ जैसे प्रबोधन युग के विचारकों से मानी जाती है, परंतु आर्थिक चिन्तन का बौद्धिक इतिहास इससे कहीं अधिक प्राचीन और विविधतापूर्ण है। इन पुरातन परंपराओं में भारत की प्राचीन आर्थिक परंपरा अत्यंत गहन और विशिष्ट है, जिसे अपेक्षाकृत कम खोजा गया है। यहाँ आर्थिक सिद्धांत धार्मिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोणों में गहराई से समाहित थे।

Source: https://www.goodreads.com

Scanned with OKEN Scanner

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन को समझना मात्र एक शैक्षणिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह उस सभ्यता की झलक है, जिसने धन, निर्धनता, शासन और न्याय जैसे प्रश्नों का समाधान आधुनिक अर्थशास्त्र के जन्म से बहुत पहले किया था। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन उन सिद्धांतों, नियमों और व्यवहारों को दर्शाता है जो आर्थिक जीवन से जुड़े हुए थे और जिन्हें भारत की शास्त्रीय परंपराओं और ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया था। ये विचार आधुनिक आर्थिक शब्दावली में न होकर वैदिक ऋचाओं, धर्मशास्त्रों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों में कृषि, व्यापार, कर, श्रम, धन-संचय, गरीबी उन्मूलन और राज्य-शासन जैसे विषयों पर गहन विचार किया गया है। जहाँ आधुनिक अर्थशास्त्र प्रायः मात्रात्मक विश्लेषण और बाज़ार-केन्द्रित तर्क पर आधारित होता है, वहीं प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण समग्र था। यहाँ अर्थशास्त्र को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा गया। आर्थिक गतिविधियों का लक्ष्य केवल भौतिक संपत्ति की वृद्धि न होकर सामाजिक समरसता, व्यक्तिगत कर्तव्य (धर्म) और सामूहिक कल्याण (लोकसंग्रह) की प्राप्ति था। आर्थिक जीवन नैतिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होता था और जीवन के चार पुरुषार्थों–धर्म (कर्तव्य), अर्थ (धन), काम (इच्छा) और मोक्ष (मुक्ति)–से जुड़ा हुआ था।

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का अध्ययन इसीलिए मूल्यवान है क्योंकि वे मौलिक, नैतिकतापूर्ण और टिकाऊ हैं। इन प्रणालियों का विकास पश्चिमी आर्थिक ढाँचों से स्वतंत्र रूप से हुआ और वे इस बात की गवाही देते हैं कि एक सभ्यता किस प्रकार जटिल आर्थिक गतिविधियों को सामाजिक और नैतिक संतुलन के साथ संचालित कर सकती है। जब आज के आर्थिक तंत्रों पर असमानता, पर्यावरणीय हानि और नैतिक शून्यता जैसे आरोप लगते हैं, तब प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण उत्तरदायित्व, संतुलन और समग्र कल्याण की वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं।

प्राचीन भारत एक समृद्ध और जुड़ा हुआ आर्थिक तंत्र था। पाटलिपुत्र, उज्जैन और तक्षशिला जैसे नगर व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे, और भारतीय व्यापारी रोम, चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापार करते थे। इस आर्थिक जीवंतता के पीछे जो बौद्धिक आधार था, उसे समझना इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत के विकास के संदर्भ में, पारंपरिक आर्थिक सिद्धांतों की पुनरावृत्ति एक अधिक सांस्कृतिक रूप से आधारित नीतिगत ढाँचे का निर्माण कर सकती है। जैसे विकेन्द्रीकृत शासन, नैतिक व्यापारिक आचरण और कल्याण-केंद्रित शासन की अवधारणाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। इन परंपराओं की पुनर्पहचान से ऐसे विकास मॉडल निर्मित किए जा सकते हैं जो आर्थिक रूप से सक्षम होने के साथ-साथ सांस्कृतिक रूप से सामंजस्यपूर्ण भी हों।

प्राचीन भारत के आर्थिक विचार किसी एक ग्रंथ या लेखक तक सीमित नहीं हैं। ये अनेक ग्रंथों और परंपराओं में विस्तारित हैं:

- **वेद:** धार्मिक होते हुए भी इनमें व्यापार, पशुपालन और कृषि जैसी आर्थिक क्रियाओं के उल्लेख हैं।
- **उपनिषद और महाकाव्य (महाभारत और रामायण):** इनमें संपत्ति, राजधर्म और न्याय जैसे विषयों पर दार्शनिक चर्चाएँ मिलती हैं।
- **धर्मशास्त्र (जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति):** ये वर्णानुसार कर्तव्यों, संपत्ति के अधिकार, कर, उत्तराधिकार और व्यापार नैतिकता के नियमों को बताते हैं।
- **कौटिल्य का अर्थशास्त्र:** यह प्राचीन भारत में राजनीति और अर्थनीति का अत्यंत संगठित और व्यापक ग्रंथ है, जिसमें शासन-कला, कर प्रणाली, श्रम, व्यापार, गुप्तचर नीति और सैन्य रणनीति का वर्णन है।
- **शिलालेख और पुरातात्त्विक अभिलेख:** इनसे आर्थिक लेन-देन, कर, शिल्प-गिल्ड तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमाण मिलता है।

शुक्र नीतिसार, कात्यायन का अर्थशास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कमंडक नीतिसार जैसे अनेक ग्रंथों ने भारतीय आर्थिक चिन्तन में योगदान दिया है। मनुस्मृति, महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में भी इसका गहन वर्णन है। जहाँ पाश्चात्य विचारकों जैसे एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है, वहीं भारतीय दृष्टिकोण वेदों को इसकी उत्पत्ति मानता है और आचार्य चाणक्य को इसका वास्तविक प्रवर्तक मानता है।

वेदों में वैश्यों और आर्थिक गतिविधियों का उल्लेख आने के पश्चात इन गतिविधियों को विधिवत करने के उपायों पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। यजुर्वेद में व्यापार के सिद्धांत को "विनिमय" के रूप में प्रस्तुत किया गया है:

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारञ्च हरासि मे, निहान्निहराणि ते।। (यजुर्वेद 50/3)

"तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँ। तुम मेरे लिए रखो, मैं तुम्हारे लिए रखूँ। तुम मुझे अपना सामान दो, मैं तुम्हें उसका मूल्य दूँ।" (यजुर्वेद 3/50)

व्यापार से संबंधित शब्द जैसे *वसना* (मूल्य), *शुल्क* (कर/शुल्क), और *निहारा* (बिक्री) भी वेदों में आते हैं। चरित्र की पवित्रता, व्यवहार की शुद्धता, और दृढ़ता जैसे

Scanned with OKEN Scanner

गुण व्यापार में सफलता के लिए अनिवार्य माने गए हैं। अथर्ववेद (3/15/04) में इसे "चरितम्-उत्थितम्" (श्रेष्ठ आचरण) कहा गया है। भारतीय ऋषियों ने धन को जीवन के लिए आवश्यक माना, परंतु इसके अर्जन की विधि को वैज्ञानिक और योजनाबद्ध बताया। उनके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों के माध्यम से एक सुखी और समृद्ध जीवन संभव है। यह समग्र दृष्टिकोण विश्व की अन्य किसी आर्थिक प्रणाली में देखने को नहीं मिलता। आचार्य चाणक्य के प्रसिद्ध वाक्य से यह पुष्टि होती है

"सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः।"

(अर्थात् सुख का मूल धर्म है, और धर्म का मूल अर्थ है।)

ऋग्वेद भी इस बात की पुष्टि करता है कि धर्म और अर्थ में कोई विरोध नहीं है। एक मंत्र कहता है:

"परिचिन्मो द्रविणं मामन्यदुतस्य पथा नमसा विवसेत्,
उत स्वेन क्रतुना सम वैदेते श्रेयांसं दक्षं मनर्षा जग्रभ्यात्।" (ऋग्वेद 10.31.2)

इसका अर्थ है कि सभी लोगों को धन और समृद्धि के विषय में विचार करना चाहिए, परंतु वे इसे विनम्रता और विवेक से सही मार्ग पर अर्जित करें। यह भी बताया गया है कि धन को धर्मपूर्वक और सत्य के साथ अर्जित करना चाहिए।

इस प्रकार, धर्म, अर्थ और काम के मध्य संतुलन बनाए रखना भारतीय परंपरा में सदैव आवश्यक माना गया है। इसी कारण भारत प्राचीन काल से ही एक सुखी, समृद्ध और वैभवशाली राष्ट्र रहा है।

2. ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन भारत का आर्थिक चिंतन एक शून्य में विकसित नहीं हुआ, अपितु यह सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक विकास की सदियों लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। इसकी समग्रता और गहराई को समझने के लिए यह आवश्यक है कि भारत के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में आर्थिक विचारों के विकास का अध्ययन किया जाए। प्राचीन भारत की बौद्धिक भूमि वेदों की कर्मकाण्ड प्रधान दृष्टि, अर्थशास्त्र की व्यवहारिक नीतियों तथा बौद्ध और जैन धर्मों की नैतिक शिक्षा से आकार ग्रहण करती थी। यद्यपि ये काल विभिन्न थे, परन्तु इन्होंने मिलकर एक समेकित जीवन दृष्टिकोण को जन्म दिया जिसमें अर्थशास्त्र, नैतिकता और आध्यात्मिकता का सह-अस्तित्व था।

2.1 वैदिक काल (1500–600 ई.पू.)

सामाजिक और आर्थिक संरचना

भारतीय सभ्यता का सबसे प्रारंभिक काल, जिसके लिए हमारे पास पर्याप्त ग्रंथीय साक्ष्य हैं, वैदिक काल कहलाता है। इस काल का नाम चार वेदों–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद–पर आधारित है। प्रारंभिक वैदिक युग (1500–1000 ई.पू.) में समाज मुख्यतः पशुपालक था और संपत्ति का मापदंड गौ-संपत्ति थी। ऋग्वेद में गायों को समृद्धि का प्रतीक माना गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पशुधन का स्वामित्व आर्थिक जीवन का केन्द्र था।

बाद के वैदिक काल (1000–600 ई.पू.) में समाज कृषि आधारित स्थायी जीवनशैली की ओर अग्रसर हुआ। भूमि एक प्रमुख आर्थिक संसाधन बन गई, और यजुर्वेद तथा अथर्ववेद जैसे ग्रंथों में हल चलाने, बीज बोने और सिंचाई के उल्लेख मिलते हैं। यद्यपि इस समय व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व के स्पष्ट प्रमाण कम हैं, परन्तु भूमि की उत्पादक संपत्ति के रूप में महत्ता आर्थिक दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को दर्शाती है।

वेदों में अर्थ की अवधारणा

'अर्थ' शब्द जो चार पुरुषार्थों में से एक है, इसी काल में प्रमुखता से उभरा। बाद में यह धन और आर्थिक लाभ से जुड़ गया, परन्तु वैदिक सन्दर्भ में इसका आशय व्यापक रूप

Scanned with OKEN Scanner

से भौतिक समृद्धि और जीवनयापन के साधनों से था। यह स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं था, अपितु इसे धर्म (नैतिक कर्तव्य) और काम (इन्द्रिय सुख) के साथ संतुलन में रखना आवश्यक था, जो अंततः मोक्ष (मुक्ति) की प्राप्ति की ओर ले जाता था।

इस प्रकार, वैदिक आर्थिक दृष्टिकोण व्यावहारिक आवश्यकताओं और नैतिक-धार्मिक कर्तव्यों के समन्वय से निर्मित था। व्यापार और उत्पादन का उद्देश्य केवल लाभ नहीं, बल्कि वैदिक कर्मकाण्डों एवं दान में संपत्ति का सदुपयोग था।

2.2 उपनिषद और धर्मशास्त्र काल (600 ई.पू. – 200 ई.)

इस काल में भारतीय बौद्धिक जीवन में एक प्रमुख परिवर्तन देखा गया। उपनिषदों का प्रादुर्भाव, बौद्ध और जैन धर्मों का उत्थान, तथा धर्मशास्त्रों की रचना ने संपत्ति और आर्थिक गतिविधियों की धारणा को अधिक नैतिक और चिंतनशील बनाया। धर्मशास्त्रों ने सामाजिक भूमिकाओं, विधियों और कर्तव्यों का संहिताकरण किया, जिनके गहन आर्थिक प्रभाव थे।

उपनिषदों में दार्शनिक विकास

उपनिषद (लगभग 800–500 ई.पू.) कर्मकाण्ड केंद्रित धर्म से दार्शनिक चिंतन की ओर संक्रमण का संकेत देते हैं। यद्यपि ये ग्रंथ सीधे-सीधे आर्थिक नहीं हैं, फिर भी इनमें इच्छा, धन, वैराग्य और जीवन के उद्देश्य पर गहन विचार प्रस्तुत किए गए हैं। आर्थिक गतिविधियाँ गृहस्थ आश्रम के दौरान आवश्यक मानी जाती थीं, परन्तु जीवन के बाद के चरणों (वानप्रस्थ और संन्यास) में उनसे ऊपर उठने को कहा गया।

इन ग्रंथों में यह विचार भी व्यक्त हुआ कि सच्ची संपत्ति आत्म-ज्ञान है, और केवल भौतिक संचय जीवन की पूर्ति नहीं करता। तथापि, पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक दायित्वों के निर्वहन हेतु अर्थसाधन अर्जन को मान्यता दी गई।

धर्मशास्त्र साहित्य और सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था

इस काल में धर्मशास्त्रों की परंपरा का विकास हुआ, जिनमें प्रमुख हैं मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति। इन ग्रंथों में निम्नलिखित के लिए विस्तृत व्यवस्था दी गई:

- संपत्ति अधिकार और उत्तराधिकार नियम
- वर्ण आधारित श्रम विभाजन
- व्यापार, ऋण और ब्याज से संबंधित नियम

- कर संग्रह और राज्य की उत्तरदायित्व व्यवस्था

धर्मशास्त्रों में आर्थिक भूमिकाओं को वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत निर्धारित किया गया, जिसमें ब्राह्मण (विद्या और यज्ञ), क्षत्रिय (रक्षा और शासन), वैश्य (कृषि, व्यापार, पशुपालन) और शूद्र (सेवा कार्य) के कर्तव्य निर्दिष्ट थे। यद्यपि यह व्यवस्था कठोर प्रतीत होती है, फिर भी यह सामाजिक संतुलन और आर्थिक दक्षता सुनिश्चित करने का प्रयास थी।

धर्म और अर्थनीति का संबंध

इस काल में भारतीय आर्थिक चिंतन की एक विशेषता थी–धन और नैतिकता के बीच घनिष्ठ संबंध। अर्थ को केवल तभी वैध माना गया जब वह धर्म के अनुरूप हो। "दान" और "भिक्षा" जैसे सिद्धांत सामाजिक पुनर्वितरण के माध्यम बने। राजा और व्यापारी वर्ग को भी ब्राह्मणों, मंदिरों और गरीबों को उदारतापूर्वक दान देने के लिए प्रेरित किया गया।

धन की नैतिक मर्यादाएँ मजदूरी, ऋण नीति और शोषण निषेध तक विस्तृत थीं। अत्यधिक ब्याज की निंदा की गई, जो आर्थिक न्याय की प्राचीन चेतना को दर्शाता है।

2.3 प्राचीन भारत में धर्म का आर्थिक विचारों में योगदान

धर्म ने प्राचीन भारत में आर्थिक दृष्टिकोणों और आचरणों को गहराई से प्रभावित किया। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की भांति यह लौकिक या धर्मनिरपेक्ष नहीं था, बल्कि हर आर्थिक क्रिया को आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाता था।

हिन्दू दृष्टिकोण

हिन्दू दर्शन में चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–के संतुलित साधन को आदर्श जीवन माना गया। गृहस्थ को न केवल धन कमाने की अनुमति थी, बल्कि उसका यह कर्तव्य भी था कि वह अपने परिवार और समाज का भरण-पोषण करे। परन्तु यह धन शुद्ध मार्ग (श्रेष्ठ मार्ग) से अर्जित होना चाहिए तथा सदकर्मों में लगाया जाना चाहिए।

बौद्ध और जैन दृष्टिकोण

बौद्ध और जैन परंपराओं ने आर्थिक विचारों में नई नैतिकता जोड़ी। बुद्ध का मध्यम मार्ग अधिक भोग और अधिक त्याग दोनों से बचने की सलाह देता है और गृहस्थ को ईमानदारी और संयम से धन कमाने को प्रेरित करता है। बौद्ध विहारों के नियम संपत्ति प्रबंधन और सामूहिक उपभोग को व्यवस्थित करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

जैन दर्शन में अहिंसा (अहिंसा) और अपरिग्रह (गैर-संचय) के सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं। जैन समुदायों ने व्यावसायिक नैतिकता को अपनाया, जिसमें सत्य-लेन-देन, न्यूनतम हानि और समाज सेवा की भावना रही।

3. प्रमुख आर्थिक ग्रंथ और विचारक

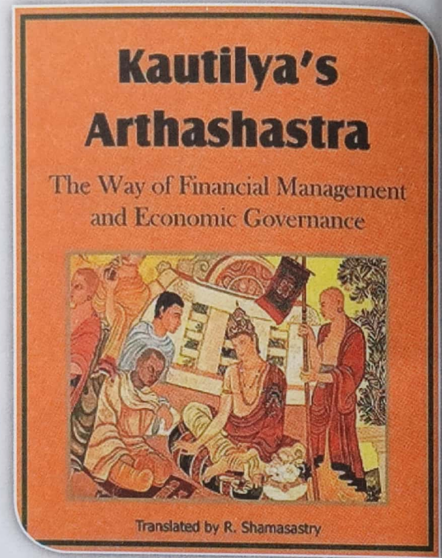

Source: https://www.goodreads.com

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों में गहराई से अंतर्निहित हैं, जो शासन, नैतिकता, विधि और धर्म से संबंधित हैं। यद्यपि ये ग्रंथ आधुनिक अर्थशास्त्रीय अर्थ में "आर्थिक ग्रंथ" के रूप में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, फिर भी इनमें धन सृजन, संसाधनों का वितरण, कर प्रणाली, श्रम, व्यापार और राज्य की भूमिका पर गहन विचार व्यक्त किए गए हैं। इनमें से कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', 'मनुस्मृति' जैसे धर्मशास्त्र ग्रंथ तथा 'शुक्रनीति' जैसे राजनीतिक-नैतिक ग्रंथ विशेष रूप से गहनता और व्यापकता के लिए उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त, बौद्ध जातक कथाएँ तथा जैन ग्रंथ आर्थिक आचरण पर एक वैकल्पिक नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

यह खंड उन प्रमुख विचारकों और ग्रंथों का विश्लेषण करता है जिन्होंने प्राचीन भारत की आर्थिक सोच को आकार दिया।

3.1. कौटिल्य का अर्थशास्त्र

'अर्थशास्त्र' प्राचीन भारत में शासन और अर्थनीति पर रचित सबसे विस्तृत और व्यवस्थित ग्रंथों में से एक है। इसे पारंपरिक रूप से कौटिल्य (जो चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी प्रसिद्ध हैं) द्वारा रचित माना गया है, जो चंद्रगुप्त मौर्य (321 ईसा पूर्व) के मुख्य

सलाहकार थे। यह ग्रंथ कई शताब्दियों तक लुप्त रहा और 1905 में पुनः प्राप्त हुआ। यह प्राचीन विश्व में राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर लिखे गए सर्वप्रथम और सर्वाधिक विस्तृत ग्रंथों में से एक है। 'अर्थशास्त्र' का शाब्दिक अर्थ है – "धन और राज्यशास्त्र का विज्ञान"।

यह ग्रंथ नैतिक या आध्यात्मिक ग्रंथों के विपरीत, पूर्णतः व्यावहारिक और उपयोगितावादी है। इसमें शासक को राज्य का प्रभावी संचालन, विधि व्यवस्था बनाए रखना, और अधिकतम धन व शक्ति अर्जित करने की रणनीतियाँ बताई गई हैं। कौटिल्य ने आर्थिक स्थिरता को एक सशक्त राज्य की नींव माना। उन्होंने कहा था – "अर्थ ही सबसे प्रमुख पुरुषार्थ है", क्योंकि धर्म, काम और मोक्ष – शेष तीनों पुरुषार्थ – की प्राप्ति बिना अर्थ के संभव नहीं।

हालाँकि अर्थ को प्रमुख मानने का अर्थ यह नहीं था कि नैतिकता को त्याग दिया जाए; आर्थिक क्रियाएँ राज्य के नियमन में होती थीं और लोककल्याण के उद्देश्य से संचालित होती थीं। प्राचीन भारतीय विचारधारा समग्र विकास पर बल देती थी, जिसमें धन और धर्म, भौतिकता और आध्यात्मिकता, संग्रह और त्याग, अर्जन और वितरण, व्यक्ति और समाज, स्वतंत्रता और नियंत्रण – इन सभी के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक माना गया।

शुक्राचार्य की दृष्टि से अर्थशास्त्र

शुक्राचार्य ने अपनी 'नीतिसार' में अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा –

"श्रुतिस्मृतिविरोधेन राजवृत्तादिशासनं,
संयुक्तार्थार्जनं यत्र अर्थशास्त्रं तदुच्यते।" (नीतिसार 4.54)

अर्थात – वह शास्त्र जिसमें श्रुति और स्मृति के विरुद्ध न जाकर राजकीय व आर्थिक नीति तथा शासन का वर्णन किया गया हो और जिसमें नैतिक रूप से धन अर्जन के उपाय हों – वही 'अर्थशास्त्र' कहलाता है।

उन्होंने यह भी कहा – "अर्थ केवल अर्जन का विषय नहीं, अपितु अनर्थों से बचाव का उपाय भी है।" (नीतिसार 1.154)

वार्ता के चार प्रमुख अंग

शुक्राचार्य के अनुसार 'वार्ता' नामक आर्थिक गतिविधियों में चार क्षेत्र आते हैं – (1) सूद पर लेन-देन, (2) कृषि, (3) व्यापार, और (4) गौ-संवर्द्धन। इन कार्यों में निपुण व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों से मुक्त रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

"कुसीद कृषिवाणिज्यं गोरक्षा वार्त्ताच्यते।
सम्पन्नो वार्तया साधुर्नावृत्तेर्मम्रृच्छति॥" (नीतिसार 1.156)

चाणक्य का दृष्टिकोण

चाणक्य ने भी जीवन की समस्त भौतिक गतिविधियों को अर्थशास्त्र की परिधि में माना। उनके अनुसार – भूमि, धन, पशु, ज्ञान, कला और कृषि – ये सब 'अर्थ' के अंतर्गत आते हैं। उन्होंने कहा – "मनुष्य स्वाभाविक रूप से इच्छाओं से प्रेरित होता है और इन इच्छाओं की पूर्ति का साधन अर्थ (धन) ही है।"

चाणक्य ने यह भी कहा –

"अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति॥" (चाणक्य नीति, 5/15)

अर्थात – अन्यायपूर्वक अर्जित धन दस वर्षों तक तो टिकता है, परंतु ग्यारहवें वर्ष में वह समूल नष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र की प्रमुख आर्थिक अवधारणाएँ

1. **राज्य और अर्थव्यवस्था:** कौटिल्य के अनुसार राज्य ही प्रमुख आर्थिक संस्था है। राजा न केवल धर्म का रक्षक है, अपितु आर्थिक नियोजन और प्रशासन का मुख्य अधिकारी भी है।
2. **कर और राजस्व:** इसमें करों का विस्तृत विवरण मिलता है: भूमि कर (बली), व्यापार शुल्क, खनिज शुल्क, दंड, वन उत्पादन कर, जल-प्रयोग शुल्क आदि। कर प्रणाली में लचीलापन था – समृद्धि के समय कर सामान्य और संकट के समय कम किया जाता था।

कानून, अर्थशास्त्र और शासन का महत्व

अर्थशास्त्र की पुस्तक 1, अध्याय 2 में चाणक्य (कौटिल्य) विभिन्न ज्ञान की धाराओं के महत्व पर विभिन्न दर्शनों की विविधताओं को स्वीकार करते हैं। वे उसनस्, बृहस्पति, मनु और अपनी स्वयं की परंपरा के दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हैं।

उसनस् का मत है कि शासन ही एकमात्र आवश्यक ज्ञान है, क्योंकि इसके बिना अन्य कोई भी विद्या कार्य नहीं कर सकती। बृहस्पति का मत है कि दो प्रमुख क्षेत्र हैं: शासन और अर्थशास्त्र (जो कृषि, पशुपालन और व्यापार से संबंधित है), और अन्य सभी विद्याएं केवल बौद्धिक विलास हैं। मनु की परंपरा तीन आवश्यक ज्ञान क्षेत्रों को मानती है: वेद, शासन और अर्थशास्त्र – यह तर्क देते हुए कि ये तीनों एक-दूसरे के सहायक हैं और अन्य सभी विद्याएं इन्हीं से निकली हुई हैं।

3. **कौटिल्य चौथे ज्ञान क्षेत्र के रूप में आन्वीक्षिकी:** (तार्किक दर्शन, जिसमें सांख्य, योग और लोकायत शामिल हैं) को जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि समस्त अन्य ज्ञान और समृद्धि इन्हीं चार क्षेत्रों से उत्पन्न होती है।
4. **अर्थशास्त्र प्रत्येक क्षेत्र की विशिष्ट भूमिका को स्पष्ट करता है:** वेद धर्म (नैतिकता) का निर्धारण करते हैं, अर्थशास्त्र धन के सृजन और क्षय को दर्शाता है, शासन न्याय (न्याय) को सुनिश्चित करता है, और आन्वीक्षिकी विवेक और तर्क प्रदान करती है, जो अन्य सभी क्षेत्रों और नैतिक व्यवहार का मार्गदर्शन करती है।
5. **कृषि और सिंचाई:** कृषि को प्रमुख आर्थिक क्रिया माना गया। राज्य सिंचाई, बीज उपलब्धता और आपदा से रक्षा हेतु उत्तरदायी था।
6. **व्यापार और वाणिज्य:** कौटिल्य ने राज्य नियंत्रित और निजी व्यापार – दोनों का समर्थन किया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और समुद्रपत्तनों की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने 'पण्याध्यक्ष' नामक अधिकारी द्वारा बाजारों पर निगरानी की व्यवस्था दी।

अधिकारियों, सलाहकारों और शासन पर निगरानी

अर्थशास्त्र में युवराज की शिक्षा, राजा की निरंतर सीखने की प्रक्रिया, तथा मंत्रियों, अधिकारियों और न्यायिक कर्मचारियों की सावधानीपूर्वक चयन और संगठन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अध्याय 5 में यह उल्लेख है कि राजा को सतत रूप से ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए और विभिन्न विषयों के विश्वसनीय बुजुर्गों से परामर्श लेना चाहिए। अध्याय 4 में मंत्रियों की नियुक्ति की प्रक्रिया का वर्णन है, जिसमें विभिन्न विद्वानों के मत दिए गए हैं: कुछ ईमानदारी और ज्ञान को प्राथमिकता देते हैं, कुछ वंश परंपरा को, कुछ उन्हें चुनने की सलाह देते हैं जिनकी कमजोरियों का लाभ उठाया जा सके, जबकि कुछ अनुभव को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। कौटिल्य अंततः सलाह देते हैं कि अधिकारियों का चयन उनके सिद्ध प्रदर्शन, चरित्र और नैतिक मूल्यों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

योग्य मंत्री (अमात्य) वे होते हैं जिनमें बुद्धिमत्ता, अनुशासन, साहस, दूरदर्शिता, ईमानदारी, विशेषज्ञता और धर्म के प्रति निष्ठा जैसे गुण हों। जिनमें कुछ गुणों की कमी हो,

Scanned with OKEN Scanner

उन्हें अधीनस्थ पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की निगरानी में कार्य करना चाहिए। अर्थशास्त्र इन गुणों की जांच के लिए कठोर परीक्षणों की अनुशंसा करता है।

अध्याय 6 में यह बताया गया है कि अधिकारियों की ईमानदारी की गुप्त रूप से निगरानी कैसे की जाए। जो भ्रष्ट पाए जाएं, उन्हें तुरंत पद से हटाया जाना चाहिए। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि जो लोग न्याय, वित्त या संवेदनशील पदों के लिए अयोग्य हों, उन्हें इन स्थानों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। केवल वे ही उच्च पदों के योग्य हैं जो सभी प्रकार के प्रलोभनों का दृढ़ता से विरोध कर सकें।

7. **श्रम और वेतन:** श्रम को योग्यता और वर्ण के आधार पर वर्गीकृत किया गया। वेतन दर निर्धारित की गईं, अनुबंध उल्लंघन पर दंड का प्रावधान था।

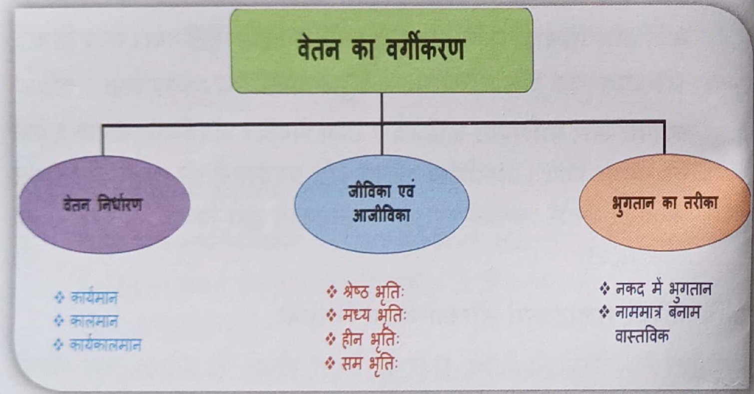

Source: https://www.goodreads.com

(क) वेतन निर्धारण की विधियों के आधार पर

शुक्राचार्य, जो प्राचीन काल के एक प्रसिद्ध विद्वान थे, तीन प्रमुख प्रकार की वेतन भुगतान प्रणालियों का वर्णन करते हैं:

1. **कार्य-आधारित वेतन (कार्यमान)**

यह प्रणाली उस कार्य या उत्पादित इकाई के अनुसार भुगतान पर आधारित होती है जो पूरा किया गया हो। शुक्राचार्य के अनुसार, एक नियोक्ता श्रमिक को कोई निश्चित भार किसी स्थान तक पहुँचाने का आदेश दे सकता है और उस कार्य के लिए एक निश्चित राशि का भुगतान कर सकता है। यह स्पष्ट रूप से टुकड़ा-दर (पीस-रेट) वेतन प्रणाली को दर्शाता है।

याज्ञवल्क्य और कौटिल्य के ग्रंथों में भी इसी प्रकार की धारणा मिलती है, जहाँ वेतन को निष्पादित कार्य या पूरी की गई विशिष्ट जिम्मेदारियों से जोड़ा गया है।

2. **काल-आधारित वेतन (कालमान)**

इस प्रणाली में, श्रमिक को सेवा की अवधि के आधार पर वेतन दिया जाता है, चाहे उसने कितना भी कार्य किया हो। यह समय कुछ घंटे, दिन, महीने या वर्षों तक हो सकता है।

मनु, जो एक प्राचीन विधि-निर्माता थे, ने विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए दैनिक वेतन मानकों का निर्धारण किया था। पतंजलि ने भी 'पादिक' शब्द का प्रयोग दैनिक मजदूरी के लिए किया है। शुक्राचार्य भी इस प्रणाली का उल्लेख करते हैं, जहाँ एक श्रमिक को प्रतिवर्ष, प्रतिमाह या प्रतिदिन एक निर्धारित राशि दी जाती है।

3. **समेकित समय और कार्य-आधारित वेतन (कार्यकालमान)**

यह मिश्रित प्रणाली समय और कार्य–दोनों के आधार पर भुगतान को निर्धारित करती है।

शुक्राचार्य के अनुसार, इस पद्धति में श्रमिक को इस आधार पर वेतन मिलता है कि उसने किसी निर्दिष्ट समयावधि में कितना कार्य किया।

कौटिल्य भी अर्थशास्त्र (पुस्तक III, अध्याय 13) में इस विचार का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि वेतन को "कर्मकालानुरूपम्" – अर्थात कार्य और समय के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। अर्थशास्त्र के एक अन्य भाग (पुस्तक II, अध्याय 23) में कुशल कारीगरों का उल्लेख है जिनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे एक निश्चित समय में निश्चित उत्पादन करें और उसके लिए पूर्वनिर्धारित वेतन लिया जाए। यह आधुनिक कांट्रैक्ट वेतन प्रणाली की तरह है, जिसमें निश्चित समय में कार्य को पूरा करने के लिए पहले से तय पारिश्रमिक दिया जाता है।

(ख) जीविका और निर्वाह के आधार पर वेतन का वर्गीकरण

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने वेतन वर्गीकरण को इस दृष्टिकोण से भी देखा कि श्रमिक और उसका परिवार अपनी कमाई से किस हद तक जीवन यापन कर सकता है। **शुक्राचार्य**, जो प्राचीन भारतीय आर्थिक और नैतिक विचारों के प्रमुख ग्रंथकार माने जाते हैं, इस प्रणाली के अंतर्गत वेतन की चार प्रमुख श्रेणियाँ बताते हैं:

1. **श्रेष्ठ भृतिः (उच्च वेतन)**

यह श्रेणी आधुनिक संदर्भ में "उचित" या "इष्टतम" वेतन के रूप में समझी जा सकती है। शुक्राचार्य के अनुसार, यह वह वेतन है जो न केवल श्रमिक की मूलभूत आवश्यकताओं को

Scanned with OKEN Scanner

पूरा करने के लिए पर्याप्त है, बल्कि उसके परिवार और आश्रितों को भी आरामदायक जीवन प्रदान करने में सक्षम है। ऐसे वेतन से परिवार को आवश्यक वस्तुएँ और कुछ सीमित सुख-सुविधाएँ भी मिल सकती हैं, जो केवल जीवित रहने से कहीं आगे का जीवन-स्तर दर्शाते हैं। इस विचार के पीछे नैतिक दृष्टिकोण यह है कि श्रमिक को ऐसा वेतन मिलना चाहिए जिससे वह गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर सके।

2. मध्यम भृतिः (मध्यम वेतन)

इस प्रकार का वेतन, जैसा कि शुक्राचार्य परिभाषित करते हैं, केवल श्रमिक के निकटतम और अनिवार्य आश्रितों–जैसे माता-पिता, पत्नी और बच्चे–की जीविका के लिए पर्याप्त होता है। यह वेतन श्रेणी उच्च और निम्न वेतन के बीच आती है और इसमें किसी विलासिता या विस्तारित परिवार का पालन शामिल नहीं होता। यह एक मूलभूत लेकिन पर्याप्त जीवनयापन को दर्शाता है।

3. सम भृतिः (सामान्य वेतन)

सामान्य वेतन वह होता है जो केवल सबसे आवश्यक आवश्यकताओं–विशेष रूप से भोजन और वस्त्र–की पूर्ति के लिए पर्याप्त होता है। शुक्राचार्य इस वेतन स्तर को श्रमिक की दक्षता से जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि श्रमिकों को उनके प्रदर्शन के अनुसार–धीमे, औसत या कुशल–वर्गीकृत किया जा सकता है और उसी के अनुसार उनका वेतन क्रमशः सामान्य, मध्यम या श्रेष्ठ होना चाहिए। इस दृष्टिकोण में वेतन को श्रमिक की उत्पादकता से सीधा संबंध बताया गया है।

4. हीन भृतिः (न्यूनतम या अपर्याप्त वेतन)

शुक्राचार्य के अनुसार, यह सबसे निम्न श्रेणी का वेतन है, जो केवल श्रमिक की अपनी जीविका चलाने के लिए पर्याप्त होता है, और वह किसी भी आश्रित का भरण-पोषण नहीं कर सकता। वे ऐसे न्यून वेतन की आलोचना करते हैं और चेतावनी देते हैं कि इस प्रकार का शोषण असंतोष और सामाजिक विघटन को जन्म देता है। वे यह भी कहते हैं कि निम्न पदों पर कार्यरत श्रमिकों को भी इतना वेतन अवश्य मिलना चाहिए कि वे अपने परिवार के लिए कम से कम भोजन और वस्त्र की व्यवस्था कर सकें। इससे स्पष्ट होता है कि केवल व्यक्तिगत निर्वाह योग्य वेतन न्यायपूर्ण समाज में नैतिक रूप से स्वीकार्य नहीं है। यह वर्गीकरण यह भी दर्शाता है कि वेतन संरचना सामाजिक भूमिका और कौशल स्तर पर आधारित होनी चाहिए, और अधिक कुशल श्रमिकों को मूलभूत निर्वाह से अधिक वेतन मिलना चाहिए।

(ग) भुगतान के प्रकार के आधार पर वेतन का वर्गीकरण

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन में वेतन का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया गया है कि उन्हें किस रूप में भुगतान किया जाता था। **स्मृतियों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति** और विभिन्न कालों के अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि उस समय वेतन भुगतान की कई प्रणालियाँ प्रचलित थीं।

1. नगद में भुगतान

प्राचीन ग्रंथों और विधि-संहिताओं में बार-बार यह उल्लेख मिलता है कि श्रमिकों को वेतन नकद और वस्तु दोनों रूपों में मिलता था। प्राचीन भारत में श्रमिकों को सिक्कों के रूप में भुगतान किया जाता था, लेकिन अनाज, वस्त्र, पशु या अन्य वस्तुओं के रूप में वेतन देना भी उतना ही सामान्य था। यह दोहरी प्रणाली उस समय की आर्थिक संरचना को दर्शाती है, जहाँ **बार्टर (वस्तु विनिमय)** और **स्थानीय व्यापार** प्रमुख थे। विशेषकर ग्रामीण और कृषि-प्रधान क्षेत्रों में नकद के बजाय वस्तु-आधारित वेतन अधिक व्यावहारिक और तात्कालिक होता था।

2. नाममात्र वेतन बनाम वास्तविक वेतन

"**नाममात्र वेतन** (Nominal Wages)" का अर्थ होता है केवल मौद्रिक (नकद) आय, जबकि "**वास्तविक वेतन** (Real Wages)" में श्रमिक को मिलने वाले कुल लाभ–जैसे सुविधाएँ, सम्मान और सामाजिक स्थिति–भी शामिल होते हैं। प्राचीन भारतीय विचारकों ने इस व्यापक दृष्टिकोण को पहचाना और स्वीकार किया।

शुक्राचार्य ने विशेष रूप से गैर-नकद लाभों के महत्व को रेखांकित किया है। इनमें शामिल हैं:

- नियोक्ता द्वारा सम्मानजनक व्यवहार
- मधुर वचन
- पहचान और सामाजिक प्रतिष्ठा
- पान, उत्तम वस्त्र जैसे उपहार
- उत्तम भोजन
- उन्नति के अवसर

इस प्रकार के लाभ श्रमिक की **गरिमा** और **संतोष** को बढ़ाते थे और उनके वास्तविक जीवन स्तर व संतुष्टि में योगदान करते थे।

Scanned with OKEN Scanner

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मनु और अन्य विधिवेत्ताओं के लेखन में भी इस समझ की झलक मिलती है। वे यह बताते हैं कि वेतन के अतिरिक्त सहायता–जैसे आवास, भोजन, या उत्सवों में उपहार–भी दिए जाने चाहिए। ये परंपराएँ यह दर्शाती हैं कि प्राचीन भारत में श्रमिक और नियोक्ता के बीच संबंध केवल आर्थिक लेन-देन नहीं, बल्कि **नैतिक जिम्मेदारी** और **सामाजिक मर्यादा** पर आधारित था।

3. **शहरी अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक ढांचा:** नगर नियोजन, सड़कें, बाजार, सफाई, जल व्यवस्था आदि को अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग माना गया।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र की विरासत

अर्थशास्त्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में आज भी प्रासंगिक है। इसमें वित्तीय नीति, राज्य हस्तक्षेप, प्रगतिशील कर प्रणाली और आर्थिक गुप्तचर जैसे आधुनिक विचारों की पूर्व सूचना मिलती है। इसकी व्यवहारिकता और यथार्थवादी दृष्टिकोण इसे अपनी कालावधि का अद्वितीय ग्रंथ बनाते हैं।

3.2. मनुस्मृति और अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथ

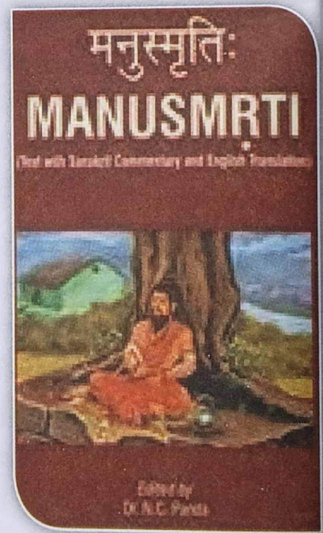

Source: https://www.goodreads.com

धर्मशास्त्र प्राचीन भारतीय विधिक एवं नैतिक ग्रंथ हैं जो व्यक्ति के धर्म अर्थात् कर्तव्यों को उसके वर्ण (जाति) और आश्रम (जीवन के चरण) के आधार पर निर्धारित करते हैं। इन ग्रंथों में सर्वाधिक प्रसिद्ध मनुस्मृति (लगभग 200 ईसा पूर्व – 200 ईस्वी) है। यद्यपि इसे प्रायः धार्मिक या सामाजिक ग्रंथ के रूप में देखा जाता है, तथापि इसमें आर्थिक विषयवस्तु भी पर्याप्त रूप से समाहित है।

आर्थिक विषयवस्तु एवं आधारभूत मान्यताएँ

1. **संपत्ति और उत्तराधिकार के नियम**

धर्मशास्त्रों में भूमि तथा चल-अचल संपत्ति के स्वामित्व, विभाजन और उत्तराधिकार से संबंधित विस्तृत नियम दिए गए हैं। यद्यपि

स्त्रियों को सीमित संपत्ति अधिकार प्राप्त थे, फिर भी कुछ ग्रंथों में स्त्रीधन को मान्यता दी गई है।

2. **व्यापार नीति और अनुबंध**

इन ग्रंथों में व्यापारिक नैतिकता पर बल दिया गया है। व्यापारियों से अपेक्षा की गई कि वे सत्यनिष्ठ रहें, माप-तौल में ईमानदारी रखें और वस्तुओं की जमाखोरी से परहेज़ करें। ऋण चुकता करने, ब्याज की दरों और अनुबंधों पर भी इन ग्रंथों में स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

3. **कर प्रणाली एवं राज्य की आय**

राजा को कृषि उत्पाद का छठा भाग, व्यापार से कर, एवं जुर्मानों की आय प्राप्त होती थी। किन्तु करों का उपयोग जनहित, न्याय-व्यवस्था, रक्षा और सार्वजनिक कार्यों के लिए किया जाना चाहिए – यह अपेक्षा थी।

नैतिक दृष्टिकोण

मनुस्मृति में दान (दान धर्म) और संपत्ति के नैतिक उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। आर्थिक कार्यकलापों को धर्म से प्रेरित होना चाहिए और अत्यधिक लालच को निंदनीय माना गया है। अनैतिक रूप से अर्जित धन (अपराजा अर्थ) को धार्मिक कार्यों हेतु अनुपयुक्त घोषित किया गया है।

3.3. अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ और विचारक

शुक्रनीति

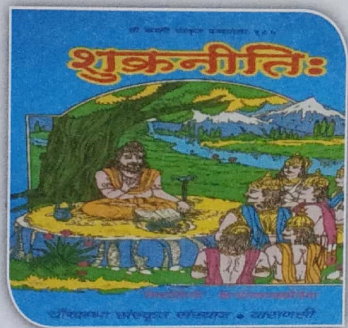

Source: https://www.goodreads.com

शुक्राचार्य द्वारा रचित शुक्रनीति एक उत्तरकालीन ग्रंथ है (संभवतः मध्यकालीन काल में)। इसमें शासन, कराधान, नीति और प्रशासन पर विशेष बल है। यह ग्रंथ कौटिल्यीय सिद्धांतों का पुनर्पुष्टिकरण करता है और धर्मयुक्त शासन एवं लोकहितकारी नीतियों पर बल देता है। इसमें न्यायसंगत कर-व्यवस्था, व्यापारिक नैतिकता और लोककल्याण की दिशा में निर्देश प्रदान किए गए हैं।

Scanned with OKEN Scanner

बौद्ध ग्रंथ और जातक कथाएँ

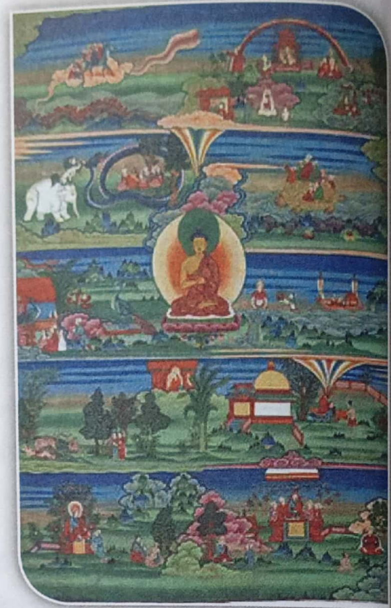

बौद्ध साहित्य विशेषतः जातक कथाएँ आर्थिक जीवन की एक नैतिक एवं मानवीय दृष्टि प्रस्तुत करती हैं। इन कथाओं में व्यापारी, श्रमिक, राजा और सामान्य जन जीवन के पात्र बनते हैं, जिनके माध्यम से ईमानदारी, करुणा और उदारता का पाठ पढ़ाया जाता है।

- सम्यक आजीविका (सम्मा आजीव) बौद्ध धर्म की एक मूल शिक्षा है, जिसमें शस्त्र-विक्रय, दास-विक्रय और पशु-वध जैसे व्यवसायों से विरति की सलाह दी जाती है।
- विनय पिटक जैसे ग्रंथों में भिक्षुओं के लिए दान-स्वीकृति, सम्पत्ति प्रबंधन एवं सामुदायिक उपभोग के नियम बनाए गए हैं – जो एक प्रकार के आरंभिक आर्थिक सहकारिता मॉडल का आभास देते हैं।
- व्यापार और बैंकिंग व्यवस्था का उल्लेख भी मिलता है, जो दर्शाता है कि एक सुव्यवस्थित वाणिज्यिक तंत्र विद्यमान था।

जैन आर्थिक नैतिकता

जैन ग्रंथ अहिंसा और अपरिग्रह (अधिकारहीनता) के सिद्धांतों को महत्व देते हैं। यद्यपि यह दर्शन संयम और त्याग पर आधारित है, फिर भी जैन समाज ऐतिहासिक रूप से व्यापार और वित्त के क्षेत्र में प्रमुख रहा है। जैन व्यापार नैतिकता सत्य, न्यूनतम हिंसा और सामाजिक सेवा पर आधारित थी।

भारतीय आर्थिक चिंतन में कारीगर, श्रमिक एवं उद्योगों की भूमिका: कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कारीगरों और श्रमिकों की अनेक श्रेणियाँ वर्णित हैं – जैसे बुनकर, राजमिस्त्री, लोहार, चर्मकार, धोबी, लकड़हारा, सुनार, मद्यनिर्माता, ग्वाले, चरवाहे, दास, श्रमिक, मछुआरे, वैद्य, कलाकार, व्यापारी आदि। अर्थशास्त्र में इनके

कार्यों की स्थिति, नियमों और उनके नियंत्रण का व्यापक विवरण दिया गया है। आचार्य चाणक्य ने इन उद्योगों के संचालन के लिए विभिन्न प्रशासनिक प्रमुखों की नियुक्ति का प्रावधान किया था।

1. **बुनकर (वायव):** अर्थशास्त्र में वस्त्र उत्पादन को राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख घटक बताया गया है। बुनकरों को एक नियंत्रित शिल्पकार वर्ग के रूप में देखा गया, जिनके कार्य की गुणवत्ता और उत्पादन पर निगरानी रखी जाती थी। राज्य की ओर से सूत्राध्यक्ष (बुनाई अधीक्षक) के माध्यम से वस्त्र निर्माण की देखरेख की जाती थी–चाहे वह नागरिक उपयोग के लिए हो, सैन्य आवश्यकताओं के लिए हो, या राजपरिवार के लिए।

वस्त्र निर्माण प्रायः **कार्यशालाओं** (वर्कशॉप्स) में किया जाता था, जिनमें से कुछ राज्य द्वारा संचालित होती थीं या शाही कराधान के अधीन होती थीं। बुनकरों की जिम्मेदारी थी कि वे विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करें–जैसे **कपास, रेशम** और **ऊन**–जो वे स्थानीय करघों (indigenous looms) का उपयोग करके बनाते थे। वे वस्त्रों की आपूर्ति **घरेलू उपयोग** और **व्यावसायिक बाजार** दोनों के लिए करते थे।

अर्थशास्त्र से संकेत मिलता है कि बुनकरों की मजदूरी उनके **कौशल स्तर, कार्य की गुणवत्ता**, और **उत्पादन की मात्रा** के आधार पर तय की जाती थी–और यह

Scanned with OKEN Scanner

प्रायः **कार्य-आधारित वेतन प्रणाली (कार्यमान)** के अनुसार होती थी, हालांकि **समय आधारित भुगतान** (कालमान) के भी उल्लेख मिलते हैं। **कौटिल्य** इस बात पर बल देते हैं कि **कच्चे माल के दुरुपयोग** से बचा जाए और बुनकरों द्वारा **धागे की गुणवत्ता, रंगाई,** और **परिष्करण** (finishing) में निर्धारित मानकों का पालन किया जाए। यदि कोई उल्लंघन होता, तो उस पर कठोर आर्थिक कानूनों के अंतर्गत दंड भी निर्धारित थे। यह दर्शाता है कि व्यापार और शिल्प कौशल में मानकों को बनाए रखना प्राचीन भारतीय शासन-व्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

2. **राजमिस्त्री (स्थपति):** राजमिस्त्री, जिन्हें शिल्पकारों और निर्माणकर्ताओं की श्रेणी में रखा गया है, सार्वजनिक अवसंरचना (public infrastructure) के निर्माण में केन्द्रीय भूमिका निभाते थे–जैसे मंदिर, आवासीय भवन, कुएँ, किले, और नगर की दीवारें।

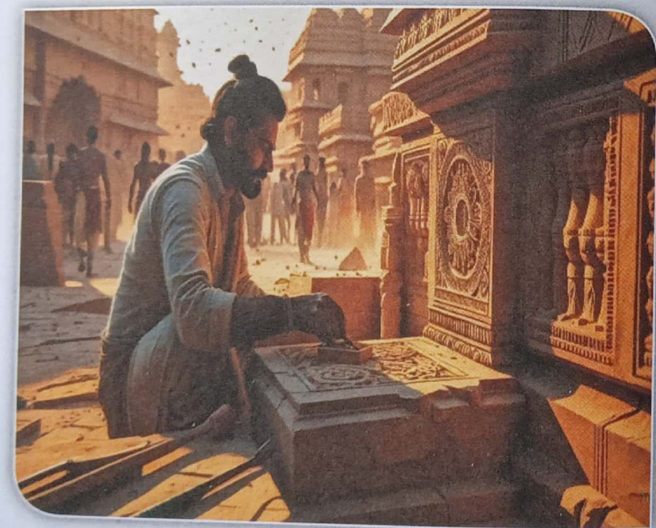

अर्थशास्त्र के अनुसार, सार्वजनिक और शाही निर्माण कार्य विशेष रूप से **नवाध्यक्ष** (निर्माण अधीक्षक) के अधीन संचालित होते थे। राजमिस्त्रियों को **निर्धारित वास्तुशास्त्रीय निर्देशों** का पालन करना होता था और उनके कार्यों की **गुणवत्ता की जांच** भी की जाती थी। राजमिस्त्रियों का श्रम **कौटिल्य द्वारा वर्णित विस्तृत शहरी नियोजन (urban planning)** के सिद्धांतों को लागू करने में

अत्यंत महत्वपूर्ण था। नगरों को **सुरक्षित रूप से दुर्गीकृत** किया जाना था, जिसमें सड़कें, जल निकासी व्यवस्था, और भवनों की योजना **सुव्यवस्थित और रक्षा-संबंधी आवश्यकताओं** के अनुसार बनाई जाती थी। **कुशल राजमिस्त्री** इस बात को सुनिश्चित करने के लिए नियुक्त किए जाते थे कि निर्माण न केवल **सौंदर्यपूर्ण** हो, बल्कि **संरचनात्मक रूप से मज़बूत** भी हो।

अन्य श्रमिकों की भाँति, राजमिस्त्रियों को भी कार्य की **प्रकृति और अवधि** के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता था–जिससे यह संकेत मिलता है कि उनका भुगतान **समय-सह-कार्य आधारित प्रणाली (कार्यकालमान)** पर आधारित होता था। **अर्थशास्त्र** में यह भी उल्लेख है कि श्रमिकों को **उचित वेतन** और **अनुकूल कार्य स्थितियाँ** प्रदान की जानी चाहिए। यह दर्शाता है कि **कौटिल्य** इस बात को भलीभांति समझते थे कि यदि **न्यायपूर्ण पारिश्रमिक** दिया जाए, तो उससे श्रमिकों की **निष्ठा और कार्यकुशलता** सुनिश्चित होती है।

3. **लोहार:** प्राचीन भारत में लोहार उपकरणों, हथियारों, औज़ारों और घरेलू वस्तुओं के निर्माण और रख-रखाव में लगे हुए थे। *अर्थशास्त्र* में नागरिक और सैन्य दोनों क्षेत्रों में धातु-कला के महत्व का उल्लेख मिलता है। धातुओं के अधीक्षक (आयसाध्यक्ष) लोहे, तांबे, टिन और सीसे जैसी धातुओं के संग्रहण, वितरण और उपयोग की देखरेख करते थे। लोहार इस व्यवस्था के अंतर्गत हल की धार, फावड़े, तलवारें, तीर और कवच जैसी वस्तुओं का निर्माण करते थे।

कृषि, निर्माण और युद्ध के लिए उनकी सेवाएं अनिवार्य थीं। इसलिए उनके कार्य की गुणवत्ता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए उस पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। उपकरणों और हथियारों को निर्धारित मानकों पर खरा उतरना आवश्यक था, और नियमों का पालन न करने पर दंड भी मिल सकता था। वेतन के संदर्भ में, लोहारों को संभवतः एक *कार्यकालमाना* प्रणाली के तहत भुगतान किया जाता था, जिसमें पारिश्रमिक उनके कार्य में लगे समय और तैयार उत्पाद की मात्रा/गुणवत्ता दोनों पर आधारित होता था।

कौटिल्य ने इन कारीगरों के आर्थिक महत्व पर ज़ोर दिया है, और सुनिश्चित किया कि उन्हें उचित पारिश्रमिक मिले तथा राज्य की समग्र आर्थिक व्यवस्था में उनका एकीकृत स्थान हो। उनकी कुशलता को विशिष्ट और अनिवार्य माना जाता था, जिससे उन्हें श्रमिक वर्ग में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

4. **चर्मकार:** प्राचीन भारत में चर्मकार मुख्य रूप से चमड़े की सफाई और परिशोधन (टैनिंग), जूते, बेल्ट, थैले, जीन (घोड़े की सवारी के उपकरण) तथा घरेलू और सैन्य उपयोग के लिए अन्य चमड़े की वस्तुओं के निर्माण में संलग्न थे। *अर्थशास्त्र* में ऐसे कारीगरों का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से उद्योग, व्यापार और व्यवसायिक वर्गों के प्रबंधन के संदर्भ में किया गया है। चमड़े की वस्तुएँ कृषि प्रधान और युद्धप्रधान समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण थीं – जैसे हलों के लिए पशु-जीन या हथियारों के लिए चमड़े की म्यानें।

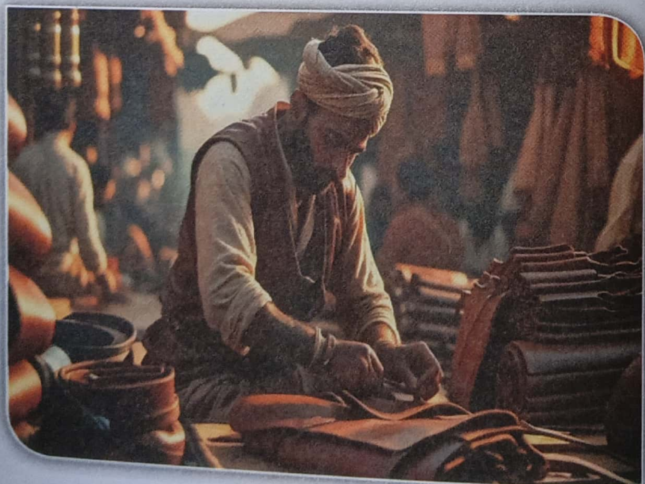

चर्मकार प्रायः श्रेणियों (श्रेणियों) के अंतर्गत कार्य करते थे, जो उनके शिल्प, मूल्य निर्धारण और अनुशासन के मानक निर्धारित करती थीं। यह सामुदायिक व्यवस्था उनके वेतन और कार्य स्थितियों के निर्धारण में भी सहायक होती थी।

यद्यपि उनका व्यवसाय वर्ण व्यवस्था में पशु-अवशेषों से संबंधित होने के कारण सामाजिक रूप से हाशिए पर माना जाता था, कौटिल्य का दृष्टिकोण *अर्थशास्त्र* में धार्मिक या कर्मकांड प्रधान न होकर व्यावहारिक है। उनका बल आर्थिक उपयोगिता, उत्पादन मूल्य और बाजार में योगदान पर है। चर्मकारों को न्यायसंगत पारिश्रमिक का अधिकार था – विशेषकर तब जब वे राज्य को आवश्यक वस्तुएँ आपूर्ति कर रहे हों या बड़े स्तर पर व्यापार में संलग्न हों।

कौटिल्य ने कारीगरों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार की वकालत की है और शोषण के विरुद्ध चेतावनी दी है। निम्न-स्थिति वाले व्यवसायों में लगे लोगों को भी अपने जीवन-यापन और परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त आय मिलनी चाहिए – यह आर्थिक न्याय के व्यापक सिद्धांत को दर्शाता है।

5. **धोबी:** धोबी, जिसे संस्कृत में *रजक* कहा जाता है, प्राचीन भारत में व्यक्तिगत और सामाजिक स्वच्छता बनाए रखने में एक आवश्यक भूमिका निभाता था। उस समय, स्वच्छ वस्त्रों को पवित्रता और सामाजिक शिष्टाचार से निकटता से जोड़ा जाता था, इसलिए धोबियों की सेवाएँ विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों और राजदरबारों में अत्यंत आवश्यक थीं।

Scanned with OKEN Scanner

यद्यपि रजक प्रायः वर्ण आधारित सामाजिक व्यवस्था में निम्न श्रेणी के माने ज थे, उनका कार्य संस्थागत दृष्टि से महत्वपूर्ण था। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* से यह सं मिलता है कि उस काल में सेवा-आधारित अनेक व्यवसाय मौजूद थे, जो विभि जनसमूहों – जैसे राज्यकर्मियों, सैनिकों और गृहस्थों – की आवश्यकताओं पूर्ति करते थे। धोबी संभवतः श्रेणी-प्रणाली (guild-like arrangements) निर्दिष्ट बस्तियों (पुर या निगम) के अंतर्गत कार्य करते थे, और उन्हें नकद, व के रूप में, या परंपरागत सेवा-आधारित शुल्क द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त होता थ कुछ अवसरों पर, विशेषकर राजकीय या मंदिर संस्थानों में, धोबियों के लि निश्चित क्षेत्र निर्धारित होते थे जहाँ वे कपड़े एकत्र और वितरित करते थे। उन सेवाएं अक्सर वंशानुगत होती थीं और स्थानीय प्रशासन या जाति पंचायतों द्वा विनियमित की जाती थीं।

6. **लकड़हारा (लक्खदहार):** लकड़हारे का पेशा उस युग में अत्यंत महत्वपूर्ण जब लकड़ी निर्माण, ईंधन, औज़ार, रथ, हथियार और धार्मिक अनुष्ठानों के लि एक प्रमुख संसाधन थी। *अर्थशास्त्र* में वनों से प्राप्त सामग्री को राज्य के महत्वपू संसाधनों के रूप में वर्णित किया गया है, और *वनव्यवहारिक* नामक अधिका का उल्लेख मिलता है, जो लकड़ी की कटाई का प्रबंधन करता था और व सम्पदा के नियंत्रित उपयोग को सुनिश्चित करता था।

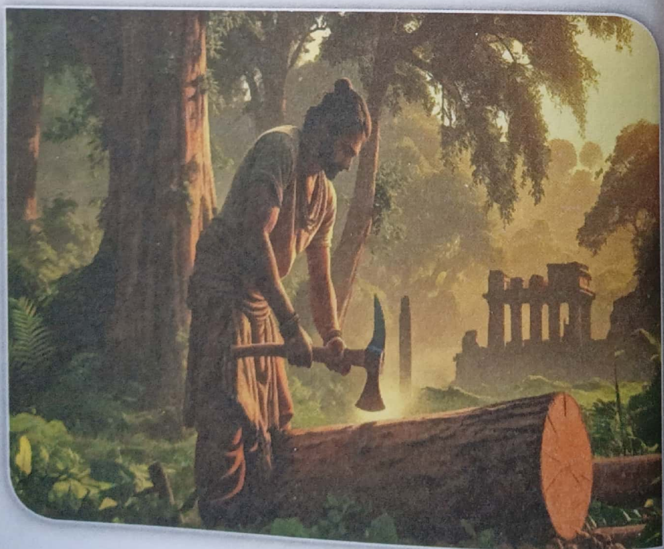

लकड़हारे प्रायः वन क्षेत्रों में कार्य करते थे और स्थानीय कारीगरों, निर्माणकर्ताओं तथा राज्य प्रायोजित परियोजनाओं को लकड़ी की आपूर्ति करते थे। उनका श्रम जोखिमपूर्ण और शारीरिक रूप से अत्यधिक कठिन माना जाता था। कई बार वे राज्य द्वारा नियोजित होते थे या व्यापारियों, बढ़इयों अथवा निर्माणकर्ताओं द्वारा विशेष प्रकार की लकड़ी की आपूर्ति के लिए अनुबंधित किए जाते थे। लकड़ी का आर्थिक महत्व – विशेष रूप से सागवान, चंदन या साल जैसी बहुमूल्य प्रजातियों का – यह दर्शाता है कि लकड़हारे, भले ही सामाजिक दृष्टि से विनम्र वर्ग में आते हों, महत्वपूर्ण व्यापार और आपूर्ति श्रृंखलाओं का हिस्सा थे।

कौटिल्य ने वन-संपदा के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया है और अनधिकृत कटाई पर दंड का प्रावधान किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि लकड़हारे पर्यवेक्षण में कार्य करते थे और उन्हें वन-नियमों का पालन करना अपेक्षित था।

7. **स्वर्णकार (सुनार):** सुनार स्वर्ण और अन्य कीमती धातुओं से आभूषण और विविध वस्तुएँ बनाते थे। इनका कार्य आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। इनकी कृतियाँ विवाह, धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक आयोजनों में उपयोगी थीं। *अर्थशास्त्र* में इनकी कार्यप्रणाली, गुणवत्ता और मानकों हेतु नियम एवं प्रक्रिया निर्धारित थीं।

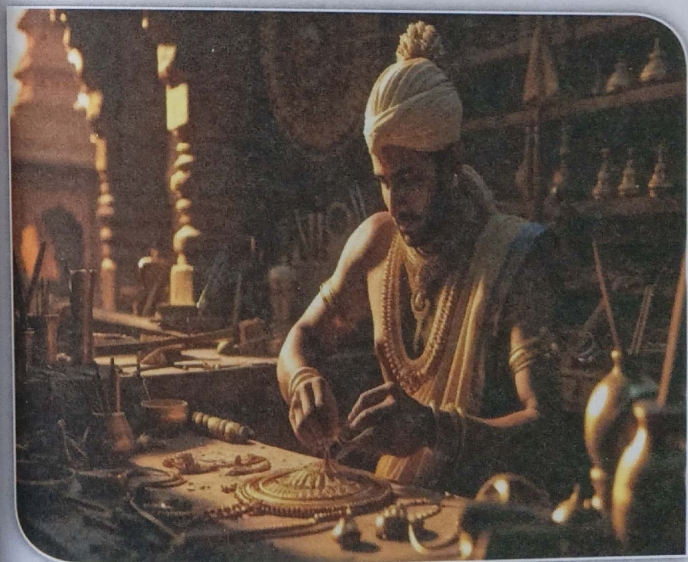

Scanned with OKEN Scanner

8. **मद्यनिर्माता (काल्बर):** काल्बर वे व्यक्ति थे जो मद्य निर्माण का कार्य करते
प्राचीन भारत में मद्य एक प्रमुख उद्योग था, जिसका सामाजिक, धार्मिक
सांस्कृतिक पहलुओं से संबंध था। *अर्थशास्त्र* में मद्य उद्योग के लिए स्पष्ट नि
और संरचनाएँ निर्धारित थीं, जिससे सामाजिक व्यवस्था और शांति बनी रहे।

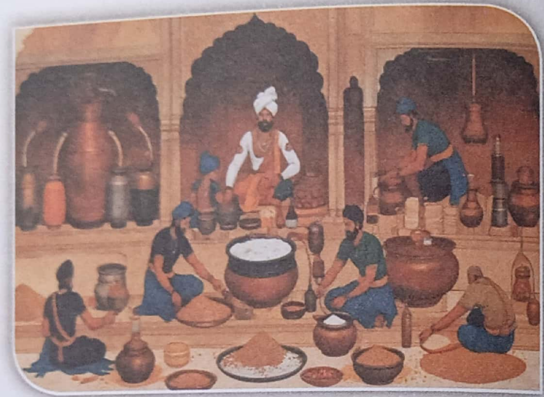

9. **ग्वाला (गोप):** ग्वाले, जिन्हें संस्कृत में "गोप" कहा जाता है, प्राचीन भारत
गायों की देखभाल और पालन-पोषण के उत्तरदायी होते थे। गायों को उस स
धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाता
वे केवल दूध, घी और गोबर (जो ईंधन और कृषि के लिए उपयोगी होता था)
स्रोत ही नहीं थीं, बल्कि समृद्धि, उर्वरता और शुभता के प्रतीक भी मानी जाती
वैदिक साहित्य और पुराणों–विशेषकर भगवान कृष्ण से जुड़ी कथाओं–में ग
का चित्रण आर्थिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण रूप में होता

गोपों के कर्तव्यों में पशुओं को चराने ले जाना, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना, बीमारियों का उपचार करना और दुहाई में सहायता करना शामिल था। संगठित ग्राम समुदायों में गोपों के समूह बड़े पशु झुंडों का प्रबंधन करते थे और प्रायः किसी ज़मींदार, ग्रामप्रधान या कभी-कभी राज्य के अधीन कार्य करते थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में "गोपाध्यक्ष" (गायों का अधीक्षक) नामक पद का उल्लेख है, जो गायों के रख-रखाव, स्वास्थ्य, प्रजनन और चराई क्षेत्रों के प्रबंधन का उत्तरदायी होता था। इससे स्पष्ट है कि गोपालन एक साधारण कार्य नहीं, बल्कि एक नियोजित और मान्यता प्राप्त व्यवसाय था जो प्रशासनिक ढांचे का हिस्सा था।

गोपों को पारिश्रमिक के रूप में आमतौर पर दूध या दुग्ध उत्पादों का हिस्सा, चराई भूमि तक पहुँच, और कभी-कभी वस्तु या मुद्रा में अतिरिक्त भुगतान भी दिया जाता था। उनका कार्य ग्रामीण परिवारों, मंदिरों और राज्य संस्थाओं के सुचारु संचालन में सीधा योगदान देता था, जो भोजन, पूजा-अनुष्ठानों और धार्मिक उपयोगों के लिए दुग्ध उत्पादों पर निर्भर रहते थे।

10. **चरवाहा (चरवाह):** चरवाहों को प्राचीन ग्रंथों में *अविपाल* या *अजपाल* कहा गया है। ये वे लोग होते थे जो भेड़ों और बकरियों की देखभाल करते थे। ये पशु ऊन, मांस, खाल और दूध के लिए अत्यंत मूल्यवान माने जाते थे, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ गहन कृषि करना कठिन था। चरवाही प्रायः पहाड़ी, वनाच्छादित या शुष्क इलाकों में की जाती थी, जहाँ गतिशील पशुपालन (mobile pastoralism) बसावट-आधारित कृषि की तुलना में अधिक उपयुक्त था।

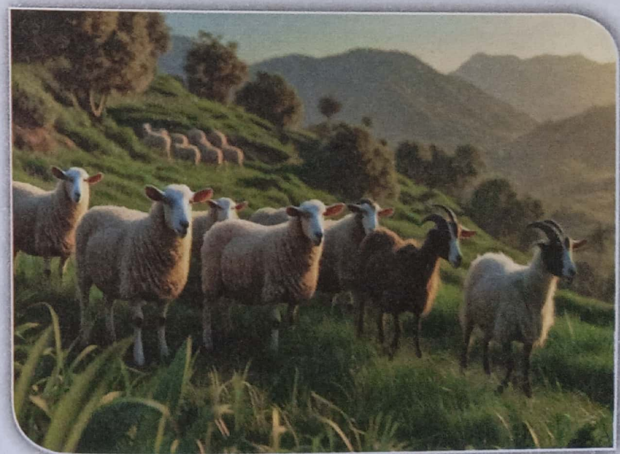

Scanned with OKEN Scanner

चरवाहे का कार्य अपने झुंड को चराई के मैदानों तक ले जाना, उन्हें जंगली जानव या चोरी से सुरक्षित रखना और उनके स्वास्थ्य की देखभाल करना होता था। इ कार्यों के लिए कौशल, धैर्य और पशुओं के साथ निकट परिचय की आवश्यकत होती थी। यद्यपि चरवाहे सामान्यतः निम्न सामाजिक वर्गों या विशेष पशुपाल समुदायों से संबंधित होते थे, उनकी आर्थिक महत्ता को अच्छी तरह समझा जात था। ऊन और चमड़ा वस्त्र निर्माण, व्यापार और कारीगरों के कामों के लिए विशेषकर नगरों और दरबारों में–अत्यावश्यक सामग्री थी।

हालाँकि *अर्थशास्त्र* में चरवाहों का नाम विशेष रूप से नहीं लिया गया है, परं उसमें पशुपालन का विस्तृत उल्लेख है और राज्य द्वारा पशुधन की निगरानी क वर्णन मिलता है। चरवाहे कभी स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे, तो कभी स्थानी प्रशासन या ज़मींदारों की निगरानी में, यह क्षेत्र और समुदाय की संरचना पर निर्भ करता था।

11. **दास:** दास वे व्यक्ति होते थे जो दूसरों के अधीन रहकर कार्य करते थे। समाज में उनका स्थान महत्वपूर्ण था, परंतु उनका जीवन कठिनाइयों से भरा होता था *अर्थशास्त्र* में दासों की स्थिति पर ध्यान दिया गया है और उनके अधिकारों की रक्ष हेतु प्रशासनिक उपाय सुझाए गए हैं।

12. **श्रमिक:** श्रमिक विविध प्रकार के शारीरिक कार्यों को अंजाम देते थे। समाज के आधारभूत कार्यों की पूर्ति में इनकी भूमिका अत्यंत आवश्यक थी। *अर्थशास्त्र* मे इनके अधिकारों की सुरक्षा एवं न्यायोचित पारिश्रमिक की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है।

13. **मछुआरा:** प्राचीन भारत में मछुआरों को प्रायः **मत्स्यजीविन** कहा जाता था अर्थात् वे लोग जो मछलियों के माध्यम से जीवनयापन करते थे। ये समुदाय मुख्य रूप से नदियों, झीलों और तटीय क्षेत्रों पर थे। उनका कार्य मुख्यतः मछली पकड़ना, उसे संसाधित करना और बेचना होता था। मछली कई समुदायों–विशेष रूप से पूर्वी, दक्षिणी और तटीय भारत के लिए पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत थी।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथों में मत्स्य-पालन (fishing) को एक **नियंत्रित आर्थिक गतिविधि** के रूप में वर्णित किया गया है। राज्य को जलस्रोतों तक पहुँच पर नियंत्रण रखने, मत्स्य उत्पादन पर कर लगाने, और मत्स्य पालन के अधिकार सौंपने का अधिकार प्राप्त था। इससे यह स्पष्ट होता है कि मछली पकड़ना केवल

एक सामान्य आजीविका ही नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से भी मूल्यवान गतिविधि थी।

मछुआरे अक्सर विशेष जातियों या उपजातियों से संबंधित होते थे, जो परंपरागत रूप से जल-आधारित जीविकाओं में संलग्न रहती थीं। वे जाल, काँटे और नावों जैसे अनेक उपकरणों का प्रयोग करते थे और कभी-कभी ग्राम-आधारित सामूहिक समूहों में कार्य करते थे। मछलियों के अतिरिक्त वे कभी-कभी अन्य जल-संसाधनों जैसे शंख, केकड़े या मोती भी एकत्र करते थे। भुगतान सामान्यतः वस्तु-रूप में – जैसे मछलियों के एक हिस्से के रूप में – या यदि वे अपना उत्पाद बाजार में बेचते थे तो स्थानीय मुद्रा में होता था।

14. **वैद्य:** वैद्य के नाम से प्रसिद्ध चिकित्सक प्राचीन भारतीय समाज में एक सम्मानित स्थान रखते थे। वे स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले प्रमुख व्यक्ति होते थे, और उनका ज्ञान भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति **आयुर्वेद** की समृद्ध परंपरा से प्राप्त होता था। ***चरक संहिता*** और ***सुश्रुत संहिता*** जैसे आयुर्वेद के मूल ग्रंथों में रोगों, निदान, औषधीय उपचार, शल्य चिकित्सा (सर्जरी) और चिकित्सकों के नैतिक आचरण का विस्तृत वर्णन मिलता है।

वैद्य प्रायः विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करते थे–या तो पारिवारिक परंपराओं में या गुरुकुल पद्धति की संस्थाओं के माध्यम से। उनका ज्ञान केवल मानव चिकित्सा तक सीमित नहीं था, बल्कि पशु-चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य उपचार को भी समाहित करता था। *अर्थशास्त्र* में राजदरबारों और नगरों में वैद्यों की भूमिका

का उल्लेख मिलता है, जहाँ उन्हें कभी-कभी राज्य द्वारा नियुक्त किया जाता था ताकि वे सैनिकों, अधिकारियों और नागरिकों की सेवा कर सकें। इसके बदले में उन्हें नियमित वेतन, भूमिदान या कर-मुक्ति जैसे लाभ प्राप्त होते थे, जो उनके पद और ख्याति पर निर्भर करता था।

वैद्य का कार्य केवल रोग का उपचार करना नहीं था, बल्कि **रोग की रोकथाम, स्वास्थ्य संवर्धन** और आहार, ऋतुओं के अनुसार जीवनचर्या तथा स्वच्छता जैसे विषयों पर परामर्श देना भी उनकी ज़िम्मेदारी मानी जाती थी। वैद्यों के लिए नैतिक आचार संहिता कठोर थी – जिसमें करुणा, गोपनीयता और लोभ से बचाव पर विशेष बल दिया गया था। अपने विद्वतापूर्ण पृष्ठभूमि और जनकल्याण में योगदान के कारण उन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। प्राचीन भारत में चिकित्सा का अभ्यास पूरी तरह से जातिगत प्रतिबंधों में सीमित नहीं था। विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले कुशल चिकित्सक, यदि वे अपनी दक्षता और नैतिक आचरण सिद्ध कर पाते थे, तो उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त हो सकती थी।

15. **नट (नाटककार):** प्राचीन भारत में **मनोरंजन करने वालों** में संगीतकार, नर्तक, अभिनेता, कथावाचक, नट (कलाबाज) और चारण (गायक-कथाकार) शामिल थे। इन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता था, जैसे – **नर्तक** (नृत्य करने वाला), **वादक** (वाद्य यंत्र बजाने वाला), **नाटक** (नाट्य कलाकार), और **कुशीलव** (घुमंतू कलाकार या गायक)। ये कलाकार राजदरबारों और लोक परंपराओं दोनों

का हिस्सा थे, और मंदिरों, राजसभाओं, जनसभाओं और ग्राम उत्सवों में प्रदर्शन करते थे।

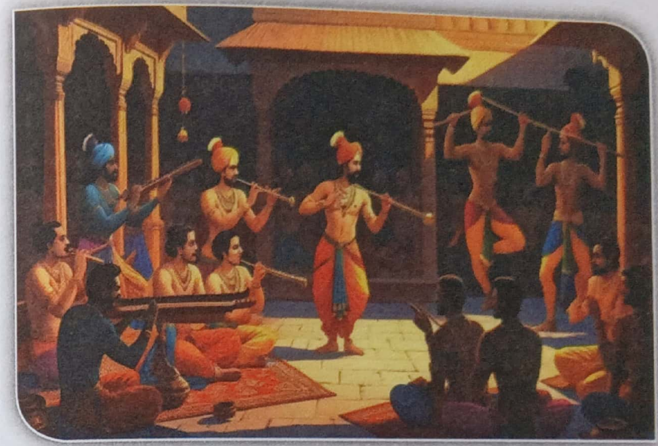

मनोरंजन की परंपरा में एक गहरा **आध्यात्मिक और धार्मिक पहलू** भी जुड़ा हुआ था। संगीत और नृत्य केवल आनंद के साधन नहीं माने जाते थे, बल्कि उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों और मंदिरों की पूजा में भी प्रयोग किया जाता था – विशेषकर भक्ति संगीत और नृत्य रूपों में। भरत मुनि का ***नाट्यशास्त्र***, जो नाटक और प्रदर्शन कला पर एक आधारभूत ग्रंथ है, विभिन्न कलाओं की तकनीक, भूमिकाएं और सौंदर्यशास्त्र को व्यवस्थित करता है और इन्हें समाज को **शिक्षा और उत्थान** देने के उपकरण के रूप में स्थापित करता है।

मनोरंजनकर्ता प्रायः वंशानुगत कलात्मक समुदायों या **श्रेणियों** से संबंधित होते थे और कभी-कभी उन्हें **राजाओं, कुलीनों या मंदिरों का संरक्षण** प्राप्त होता था। बदले में उन्हें उपहार, धन, अन्न या आवास जैसी सुविधाएं दी जाती थीं। ***अर्थशास्त्र*** में मनोरंजन करने वालों को शहरी समाज का हिस्सा माना गया है और उनके व्यवहार, आय और आचरण के लिए नियम निर्धारित किए गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक मान्यता और आधिकारिक भूमिका का संकेत मिलता है। ये कलाकार पीढ़ी दर पीढ़ी **संस्कृति, भाषा और नैतिक कथाओं** के संरक्षण और प्रसारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

16. **व्यापारी (वणिक/वणिजः):** व्यापारी, जिन्हें प्राचीन भारत में *वणिक*, *श्रेष्ठि* (धनाढ्य व्यापारी) या *सार्थवाह* (कारवां के नेता) कहा जाता था, उस काल के

सबसे प्रभावशाली आर्थिक वर्गों में से एक थे। वे देशीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार की रीढ़ थे, और मसाले, वस्त्र, धातुएं, अनाज, रत्न, इत्र और शिल्प उत्पाद जैसे अनेक वस्तुओं के लेन-देन में संलग्न रहते थे।

भारतीय व्यापारी केवल गाँवों और नगरों में ही नहीं, बल्कि दूर-दराज़ के व्यापारिक मार्गों पर भी सक्रिय रहते थे, जो भारत को **मध्य एशिया**, **मध्य पूर्व**, और **दक्षिण-पूर्व एशिया** से जोड़ते थे। *ताम्रलिप्ति*, *भृगुकच्छ (भरुच)* और *मुज़िरिस* जैसे बंदरगाह समुद्री व्यापार के प्रमुख केंद्र बन गए थे। *अर्थशास्त्र* और *जातक कथाओं* जैसे ग्रंथों में ऐसे संगठित व्यापारी समुदायों का उल्लेख मिलता है जो *श्रेणियों* (व्यापारी संघों) के रूप में कार्य करते थे–ये स्वायत्त संगठन व्यापार को नियंत्रित करते थे, न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करते थे, और कई बार बैंक या ऋणदाता की भूमिका भी निभाते थे।

प्राचीन भारत में व्यापारियों को **आदर और कानूनी सुरक्षा** प्राप्त थी–विशेषकर वे जो करों या दान के माध्यम से अर्थव्यवस्था में योगदान देते थे। *अर्थशास्त्र* में व्यापार नियमन, सीमा शुल्क, माप-तौल और बेईमानी पर दंड जैसी व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। आर्थिक क्षेत्र के अलावा, व्यापारी **मंदिरों, शिक्षण संस्थानों और सार्वजनिक अवसंरचना** के संरक्षक भी थे। वे अक्सर कुएँ, सड़कें, और धर्मशालाएं बनवाने में धन देते थे। उनका धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को समर्थन देना उन्हें भारतीय समाज की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों संरचनाओं में एकीकृत करता था।

4. भारतीय अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रणाली का संचालन

प्रारंभिक भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग को विशेष महत्व प्राप्त था। भारतीय समाज की मुख्यधारा कृषि और उत्पादन पर आधारित थी, जिन्हें जीवन का अभिन्न अंग माना गया। राज्य और समाज दोनों ही मिलकर एक नैतिक और आदर्शवादी आधार पर अर्थव्यवस्था की स्थापना करते थे।

इस दर्शन को समझने हेतु हमें इसके विविध घटकों जैसे उत्पादन, विनिमय और नियंत्रण प्रणालियों का विश्लेषण करना आवश्यक है। कौटिल्य की *अर्थशास्त्र* तथा अन्य ग्रंथों में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। राज्य का मुख्य कार्य निरीक्षण और व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना था।

5. आर्थिक प्रणाली की प्रमुख गतिविधियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था दो प्रमुख गतिविधियों पर आधारित थी – **उत्पादन और विनिमय**। इन्हें चार भागों में विभाजित किया गया:

1. कृषि
2. उद्योग
3. व्यापार
4. बैंकों का कार्य (कुसीद)

कृषि और उद्योग **उत्पादन** का भाग थे, जबकि व्यापार और कुसीद **विनिमय** का।

1. कृषि

भारत में कृषि सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि रही है। यह केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी समाज से जुड़ी हुई थी।

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है–

"उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट नौकरी, भीख निदान।"

अर्थात – खेती श्रेष्ठ है, व्यापार मध्यम, नौकरी निकृष्ट और भिक्षा अंतिम विकल्प।

इससे कृषि की प्रतिष्ठा और महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। कृषि भूमि को छोड़ना या उपेक्षित करना पाप माना जाता था, अतः कृषि भूमि का सदुपयोग राज्य का मुख्य कर्तव्य था।

2. उद्योग (उत्पादन)

भारतीय उद्योग वस्त्र, औज़ार, धातु एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करते थे। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, चर्म उद्योग आदि प्रमुख उद्योग थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में *सूत्राध्यक्ष* नामक अधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख है, जो वस्त्र उद्योग की निगरानी करता था। उसका कार्य केवल नियंत्रण था, न कि लाभ या हानि में हस्तक्षेप करना। वह शोषण रोकने और कर संकलन सुनिश्चित करने का कार्य करता था।

3. व्यापार

व्यापार उत्पादन और विनिमय के बीच का सेतु था। भारत में प्राचीन काल से व्यापारिक नेटवर्क फैला हुआ था। व्यापार के माध्यम से वस्तुओं के साथ-साथ संस्कृति और

Scanned with OKEN Scanner

सबसे प्रभावशाली आर्थिक वर्गों में से एक थे। वे देशीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार की रीढ़ थे, और मसाले, वस्त्र, धातुएं, अनाज, रत्न, इत्र और शिल्प उत्पाद जैसे अनेक वस्तुओं के लेन-देन में संलग्न रहते थे।

भारतीय व्यापारी केवल गाँवों और नगरों में ही नहीं, बल्कि दूर-दराज़ के व्यापारिक मार्गों पर भी सक्रिय रहते थे, जो भारत को **मध्य एशिया**, **मध्य पूर्व**, और **दक्षिण-पूर्व एशिया** से जोड़ते थे। *ताम्रलिप्ति*, *भृगुकच्छ (भरुच)* और *मुज़िरिस* जैसे बंदरगाह समुद्री व्यापार के प्रमुख केंद्र बन गए थे। *अर्थशास्त्र* और *जातक कथाओं* जैसे ग्रंथों में ऐसे संगठित व्यापारी समुदायों का उल्लेख मिलता है जो *श्रेणियों* (व्यापारी संघों) के रूप में कार्य करते थे–ये स्वायत्त संगठन व्यापार को नियंत्रित करते थे, न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करते थे, और कई बार बैंक या ऋणदाता की भूमिका भी निभाते थे।

प्राचीन भारत में व्यापारियों को **आदर और कानूनी सुरक्षा** प्राप्त थी–विशेषकर वे जो करों या दान के माध्यम से अर्थव्यवस्था में योगदान देते थे। *अर्थशास्त्र* में व्यापार नियमन, सीमा शुल्क, माप-तौल और बेईमानी पर दंड जैसी व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। आर्थिक क्षेत्र के अलावा, व्यापारी **मंदिरों, शिक्षण संस्थानों और सार्वजनिक अवसंरचना** के संरक्षक भी थे। वे अक्सर कुएँ, सड़कें, और धर्मशालाएं बनवाने में धन देते थे। उनका धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को समर्थन देना उन्हें भारतीय समाज की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों संरचनाओं में एकीकृत करता था।

4. भारतीय अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रणाली का संचालन

प्रारंभिक भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग को विशेष महत्व प्राप्त था। भारतीय समाज की मुख्यधारा कृषि और उत्पादन पर आधारित थी, जिन्हें जीवन का अभिन्न अंग माना गया। राज्य और समाज दोनों ही मिलकर एक नैतिक और आदर्शवादी आधार पर अर्थव्यवस्था की स्थापना करते थे।

इस दर्शन को समझने हेतु हमें इसके विविध घटकों जैसे उत्पादन, विनिमय और नियंत्रण प्रणालियों का विश्लेषण करना आवश्यक है। कौटिल्य की *अर्थशास्त्र* तथा अन्य ग्रंथों में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। राज्य का मुख्य कार्य निरीक्षण और व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना था।

5. आर्थिक प्रणाली की प्रमुख गतिविधियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था दो प्रमुख गतिविधियों पर आधारित थी – **उत्पादन और विनिमय**। इन्हें चार भागों में विभाजित किया गया:

1. कृषि
2. उद्योग
3. व्यापार
4. बैंकों का कार्य (कुसीद)

कृषि और उद्योग **उत्पादन** का भाग थे, जबकि व्यापार और कुसीद **विनिमय** का।

1. कृषि

भारत में कृषि सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि रही है। यह केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी समाज से जुड़ी हुई थी।

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है–

"उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट नौकरी, भीख निदान।"

अर्थात – खेती श्रेष्ठ है, व्यापार मध्यम, नौकरी निकृष्ट और भिक्षा अंतिम विकल्प।

इससे कृषि की प्रतिष्ठा और महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। कृषि भूमि को छोड़ना या उपेक्षित करना पाप माना जाता था, अतः कृषि भूमि का सदुपयोग राज्य का मुख्य कर्तव्य था।

2. उद्योग (उत्पादन)

भारतीय उद्योग वस्त्र, औज़ार, धातु एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करते थे। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, चर्म उद्योग आदि प्रमुख उद्योग थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में *सूत्राध्यक्ष* नामक अधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख है, जो वस्त्र उद्योग की निगरानी करता था। उसका कार्य केवल नियंत्रण था, न कि लाभ या हानि में हस्तक्षेप करना। वह शोषण रोकने और कर संकलन सुनिश्चित करने का कार्य करता था।

3. व्यापार

व्यापार उत्पादन और विनिमय के बीच का सेतु था। भारत में प्राचीन काल से व्यापारिक नेटवर्क फैला हुआ था। व्यापार के माध्यम से वस्तुओं के साथ-साथ संस्कृति और

Scanned with OKEN Scanner

विचारों का आदान-प्रदान भी होता था। *अर्थशास्त्र* और *मनुस्मृति* में व्यापार के संचालन हेतु स्पष्ट दिशा-निर्देश हैं। राज्य का कार्य निष्पक्ष व्यापार सुनिश्चित करना और अनुचित व्यवहार को रोकना था।

4. बैंकों का कार्य (कुसीद)

प्राचीन भारत में बैंकिंग प्रणाली *कुसीद* के रूप में विकसित हुई थी। यह ऋण, उधारी और वित्तीय प्रवाह से संबंधित थी। व्यापार और उत्पादन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना इसका कार्य था।

कुसीद नामक साहूकार व्यापार को आर्थिक संबल प्रदान करते थे। राज्य ने इस प्रणाली को सुचारु रूप देने हेतु आवश्यक उपाय किए।

राज्य की नियामक भूमिका

प्राचीन भारत में राज्य का मुख्य कार्य आर्थिक गतिविधियों की निगरानी करना था। राज्य स्वयं इन कार्यों में सीधे रूप से संलग्न नहीं होता था, अपितु यह सुनिश्चित करता था कि ये क्रियाएँ न्यायपूर्वक एवं व्यवस्थित रूप से संचालित हों।

कृषि का विनियमन

कृषि के क्षेत्र में राज्य की भूमिका प्रायः राजस्व करों की वसूली तक सीमित थी। जब तक कोई कृषक भूमि की खेती करता था, वह भूमि उसकी मानी जाती थी। राज्य का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना था कि कृषि भूमि परती न पड़े और किसान सतत खेती करते रहें।

उद्योग का विनियमन

उद्योगों के लिए राज्य द्वारा विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी, जैसे कि सूत्राध्यक्ष, जिनका कार्य यह देखना होता था कि उद्योगों में शोषण न हो तथा राज्य को उचित रूप से कर प्राप्त हो।

व्यापार एवं बैंकिंग का विनियमन

व्यापार और बैंकिंग के क्षेत्र में भी राज्य की भूमिका निगरानी तक सीमित थी। राज्य ने यह सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न उपाय अपनाए कि व्यापार निष्पक्ष एवं न्यायसंगत रूप से संचालित हो। बैंकिंग प्रणाली को प्रोत्साहित करने हेतु, राज्य ने व्यापारी वर्ग को ऋण एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विविध उपायों का विकास किया।

6. प्राचीन भारत में मुद्रा प्रणाली : एक समग्र अवलोकन

प्राचीन भारत की मुद्रा प्रणाली केवल व्यापार का साधन नहीं थी, बल्कि एवं समाज की समृद्धि को सुदृढ़ करने हेतु विकसित एक संगठित आर्थिक संस्था थी। इसका मुख्य उद्देश्य धन सृजन एवं संचय की प्रक्रिया को सरल बनाना, साथ ही राज्य की सत्ता को सुदृढ़ करना था। यह प्रणाली वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं सुव्यवस्थित संगठन का प्रमाण थी, विशेषतः मुद्रा निर्माण एवं उपयोग के क्षेत्र में।

6.1 प्राचीन मुद्रा प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ

1. वैज्ञानिक मुद्रा निर्माण एवं धातु संरचना

प्राचीन भारत में मुद्राएँ यों ही अनियोजित रूप से नहीं बनाई जाती थीं, वरन् इन्हें वैज्ञानिक विधियों द्वारा मानक भार पर आधारित बनाकर निर्मित किया जाता था। प्रत्येक सिक्के में विभिन्न धातुओं का संतुलित मिश्रण किया जाता था जिससे उसकी गुणवत्ता बनी रहे एवं नकली सिक्कों की संभावना न्यूनतम हो।

उदाहरणार्थ, एक मानक सिक्का 'पण' (Pana) का भार 16 माषा होता था, जिसमें शामिल थे:

- 11 माषा चाँदी
- 4 माषा ताँबा
- 1 माषा लोहा

इस मिश्रण से मुद्रा की मूल्यवत्ता एवं स्थायित्व सुनिश्चित होता था।

2. मुद्रा की भूमिका एवं परिसंचरण

मुद्राओं का उपयोग प्राचीन भारत में प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था के संचालन में केन्द्रीय भूमिका निभाने हेतु किया जाता था, जैसे कि:

- नागरिकों से कर वसूली
- दंड एवं शुल्क आरोपण
- अधिकारियों एवं कर्मचारियों को वेतन भुगतान

राज्य के पास मुद्रा निर्माण एवं धातु खनन पर पूर्ण नियंत्रण था। इस केन्द्रीय नियंत्रण से पूरे राज्य में मुद्रा का मानकीकरण संभव हुआ और मूल्यहीनता अथवा असमानता को रोका जा सका।

Scanned with OKEN Scanner

3. सिक्कों का कालानुक्रमिक विकास

प्रारंभ में 'पण' जैसे चाँदी या मिश्रित धातु के सिक्के सामान्य रूप से प्रयुक्त होते थे। कालांतर में व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार के साथ-साथ विभिन्न मूल्य वर्गों की नई मुद्राएँ प्रचलन में आई:

- कौड़ी
- दमड़ी
- ढेला
- पाई
- आना
- रुपया

छोटे लेन-देन हेतु कौड़ियों का प्रयोग होता था, जबकि बड़े मूल्य की मुद्रा के रूप में रुपया प्रचलित हुआ।

6.2 भाषा एवं संस्कृति पर मुद्रा प्रणाली का प्रभाव

मुद्राओं के दैनिक उपयोग ने जनजीवन की भाषा एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को भी प्रभावित किया। कई कहावतें व मुहावरे मुद्रा शब्दों से प्रेरित हैं, जैसे:

- **"एक फूटी कौड़ी नहीं दूँगा"** – कुछ भी न देने की दृढ़ता
- **"ढेले भर का काम नहीं करते हो"** – कार्य के प्रति पूर्ण उपेक्षा
- **"चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए"** – अत्यधिक कंजूसी का भाव
- **"पाई-पाई का हिसाब रखना"** – अत्यधिक वित्तीय अनुशासन
- **"सोलह आने सच बोल रहा हूँ"** – सम्पूर्ण सत्य कहना

ये मुहावरे दिखाते हैं कि मुद्रा किस प्रकार आमजन के विचारों और अभिव्यक्तियों में समाहित हो चुकी थी।

6.3 स्वतंत्रता-उत्तर मुद्रा मूल्य प्रणाली

1947 में भारत की स्वतंत्रता के पश्चात भी पारंपरिक मुद्रा इकाइयों का प्रभाव कुछ समय तक बना रहा। 1957 में दशमलव प्रणाली के पूर्व प्रचलित विनिमय संरचना इस प्रकार थी:

1. 3 टूटी कौड़ियाँ = 1 कौड़ी
2. 10 कौड़ी = 1 दमड़ी
3. 2 दमड़ी या 1.5 पाई = 1 ढेला
4. 3 पाई = 1 पैसा (पुराना)

5. 4 पैसा = 1 आना
6. 16 आने या 64 पैसा = 1 रुपया

यह दशमलव पूर्व प्रणाली दर्शाती है कि प्राचीन मुद्रा प्रणाली का प्रभाव 20वीं शताब्दी तक विद्यमान था।

7. आधुनिक विश्व में प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता

प्राचीन भारत की आर्थिक प्रणाली एक अनूठे समन्वय पर आधारित थी–जिसमें व्यावहारिक प्रशासन, नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक उद्देश्य समाहित थे। यद्यपि यह चिंतन प्राचीन काल में विकसित हुआ, परंतु इसकी अवधारणाएँ आज की वैश्विक चुनौतियों जैसे कि आर्थिक विषमता, पर्यावरणीय संकट, वित्तीय अस्थिरता एवं पूँजीवाद की नैतिक समस्याओं के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो रही हैं।

7.1 नैतिक पूँजीवाद और धर्मसम्मत अर्थव्यवस्था

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में धर्म (नैतिकता) को आर्थिक गतिविधियों का मूलाधार माना गया है। विशेष रूप से हिन्दू, बौद्ध एवं जैन परंपराओं में यह प्रतिपादित है कि अर्थ (धन) की प्राप्ति तभी उचित है जब वह धर्म के अनुकूल हो।

आधुनिक प्रासंगिकता

आज जब कॉर्पोरेट लालच, कर चोरी एवं श्रमिक शोषण आम हो गए हैं, तो निम्नलिखित प्राचीन भारतीय मूल्य प्रेरणा दे सकते हैं:

- **दान** (समाजोपयोगी दान देना)
- **अपरिग्रह** (संपत्ति का संग्रह न करना)
- **सम्मा आजीव** (बौद्ध धर्म में उचित आजीविका)

ये मूल्य आज की CSR (कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व) एवं ESG (पर्यावरण, समाज व शासन) की अवधारणाओं को नैतिक गहराई प्रदान कर सकते हैं।

7.2 सतत विकास और पारिस्थितिक संतुलन

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य पर निरंतर बल दिया गया है। कृषि, जल प्रबंधन एवं वन उपयोग की नीतियाँ केवल उत्पादन हेतु नहीं थीं, अपितु

Scanned with OKEN Scanner

संरक्षण की भावना से भी प्रेरित थीं। *अर्थशास्त्र* तथा विभिन्न *स्मृतियों* में वृक्षों की अकारण कटाई, नदियों का प्रदूषण अथवा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग पर दंड का प्रावधान था, जो पारिस्थितिक संतुलन के प्रति प्राचीन जागरूकता को दर्शाता है।

आधुनिक प्रासंगिकता

जब आज का विश्व जलवायु परिवर्तन, वनों की अंधाधुंध कटाई, जल संकट एवं जैव विविधता की क्षति जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब प्राचीन दृष्टिकोण आधुनिक सतत विकास के प्रयासों हेतु दार्शनिक आधार प्रदान कर सकते हैं:

- प्रकृति को पूज्य मानना, वस्तु नहीं।
- स्थानीय और चक्रीय अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहन देना, जो अपशिष्ट एवं अति-उत्पादन को न्यूनतम करें।
- पर्यावरण नीति में नैतिक तत्वों का समावेश करना, केवल तकनीकी उपायों से आगे बढ़कर।

उदाहरणस्वरूप, *भगवद्गीता* में वर्णित "**लोकसंग्रह**" (सभी के कल्याण) की अवधारणा ऐसी नीतियों को प्रेरित कर सकती है जो अल्पकालिक आर्थिक लाभ के स्थान पर दीर्घकालिक पारिस्थितिक संरक्षण को प्राथमिकता दें।

7.3 समावेशी शासन व्यवस्था और विकेन्द्रीकरण

प्राचीन भारतीय ग्रंथों, विशेषतः *अर्थशास्त्र* में शासन एवं प्रशासन के विस्तृत ढाँचे वर्णित हैं—जैसे कर-संग्रह, सार्वजनिक निर्माण, नगरीय नियोजन, एवं आर्थिक पर्यवेक्षण। नीति निर्माण में स्थानीय अधिकारियों एवं समुदाय प्रमुखों की भूमिका दर्शाती है कि शासन प्रणाली विकेन्द्रीकृत होने की पक्षधर थी।

आधुनिक प्रासंगिकता

वर्तमान भारत तथा अन्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में स्थानीय स्व-शासन की महत्ता पर विशेष बल दिया जा रहा है, विशेषतः निम्न माध्यमों से:

- पंचायती राज संस्थाएँ
- सहकारी आन्दोलन
- जमीनी स्तर पर विकास के वैकल्पिक मॉडल

प्राचीन भारतीय आर्थिक शासन इन आधुनिक प्रवृत्तियों को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आधार दे सकता है। स्थानीय उत्तरदायित्व, जनकल्याण एवं सामुदायिक सहभागिता पर बल—ये सब आधुनिक *नीचे से ऊपर तक* की विकास रणनीतियों के साथ मेल खाते हैं, और गांधीवादी ग्राम स्वराज की भावना को भी समृद्ध करते हैं।

7.4 श्रम और व्यवसाय

प्राचीन भारत में कृषि, कारीगर, सैन्य तथा घरेलू कार्य जैसे विविध श्रम रूपों को सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में स्थान दिया गया था। इन्हें *वर्ण व्यवस्था* और *श्रेणियों* के माध्यम से संगठित किया गया था। यद्यपि जाति आधारित व्यवसाय विभाजन को सामाजिक विषमता के कारण आलोचना प्राप्त है, तथापि श्रम के संगठनात्मक सिद्धांतों में निम्न विशेषताएँ विद्यमान थीं:

- मानक वेतन एवं अनुबंध व्यवस्था
- कौशल-आधारित भूमिका वितरण
- श्रेणियों के भीतर परस्पर सहायता
- कारीगरों एवं श्रमिकों का संरक्षण

आधुनिक प्रासंगिकता

आज के श्रम बाज़ार में स्वचालन, अनौपचारिक रोजगार, और *गिग इकॉनॉमी* जैसी नवीन व्यवस्थाओं के कारण गहरे बदलाव आ रहे हैं। ऐसे में कुछ प्राचीन विचार प्रेरणा दे सकते हैं:

- श्रम की गरिमा का सम्मान करते हुए कौशल-आधारित समावेशी रोजगार नीति
- प्राचीन श्रेणियों की भाँति श्रमिक संघ एवं सहकारी संस्थाएँ
- रोजगार, वेतन एवं कार्यस्थल नैतिकता में सामाजिक उत्तरदायित्व की मान्यता

साथ ही, प्राचीन ग्रंथों में *न्यायसंगत वेतन*, *ऋण मुक्ति*, एवं *आजीविका संरक्षण* की चिंता वर्तमान *मज़दूरी विधानों*, *न्यूनतम वेतन* नीति एवं *सामाजिक सुरक्षा योजनाओं* को नैतिक आधार प्रदान कर सकती है।

7.5 दान, पुनर्वितरण और सामाजिक कल्याण

प्राचीन भारतीय संस्कृति में यह विचार गहराई से समाहित था कि धन केवल नैतिकता से अर्जित ही नहीं किया जाए, बल्कि उसे समाज के साथ साझा करना भी आवश्यक है। *दान*

Scanned with OKEN Scanner

(दान करना), *यज्ञ* (हवन-यज्ञ जैसे सामाजिक अनुष्ठान) एवं *भिक्षा* (अन्न अथवा धन वितरण) को राजा, व्यापारी एवं गृहस्थों की सामाजिक ज़िम्मेदारी माना गया।

मनुस्मृति एवं *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथों में उल्लिखित है:

- राज्य द्वारा अकाल राहत हेतु प्रावधान
- मंदिरों, सार्वजनिक सुविधाओं एवं शैक्षणिक संस्थानों को दान
- निर्धनों, विधवाओं, अनाथों एवं विकलांगों के संरक्षण हेतु नियम

आधुनिक प्रासंगिकता

ये सिद्धांत आज की आधुनिक अवधारणाओं से तुलनीय हैं:

- **सार्वभौमिक आधारभूत आय (UBI)**
- **प्रगतिशील कर प्रणाली**
- **सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा एवं शिक्षा हेतु अनुदान**
- **सामाजिक परिवर्तन हेतु परमार्थ (philanthropy)**

7.6 व्यापार, वाणिज्य और वैश्वीकरण

प्राचीन भारत के व्यापारी एक सजीव एवं वैश्विक व्यापार प्रणाली का अभिन्न अंग आचार-संहिता, माप-तौल की मानकीकरण व्यवस्था, **वचनपत्रों** *(promissory note* का प्रचलन, तथा बाज़ार नियमन दर्शाते हैं कि भारत में व्यापारिक ढाँचा अत्यंत परिष्‍ था।

आधुनिक प्रासंगिकता

आज के वैश्विक आपूर्ति-शृंखलाओं, व्यापार युद्धों एवं आर्थिक राष्ट्रवाद के युग प्राचीन भारतीय व्यापार मॉडल से निम्नलिखित शिक्षाएँ ली जा सकती हैं:

- श्रम, पर्यावरण और स्थानीय संस्कृति का सम्मान करते हुए **नैतिक वैश्वीक** को बढ़ावा देना
- **निष्पक्ष व्यापार** पद्धतियों को प्रोत्साहित करना
- **लघु एवं मध्यम उद्यमों** को प्राचीन श्रेणियों की भावना में समर्थन देना

इसके अतिरिक्त, प्राचीन व्यापारी केवल वस्त्र, मसाले या रत्न ही नहीं ले जाते थे, बल्कि **संस्कृति एवं आध्यात्मिक मूल्य** भी साथ ले जाते थे–जो यह दर्शाता है कि वाणिज्य केवल लाभ का साधन नहीं, अपितु ***सांस्कृतिक संवाद*** एवं ***मृदु शक्ति कूटनीति*** का भी माध्यम हो सकता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता केवल ऐतिहासिक या दार्शनिक नहीं है–यह व्यावहारिक, समसामयिक और रूपांतरणकारी है। आज का विश्व जब पूँजीवाद की नैतिक मोहभंग, पारिस्थितिक विनाश और सामाजिक विषमता जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है, तब प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण ऐसे वैकल्पिक ढाँचे प्रस्तुत करते हैं जिनका केन्द्रबिंदु है–नैतिकता, सततता और समष्टि-कल्याण।

यद्यपि इन विचारों को आधुनिक जटिलताओं के अनुरूप रूपांतरित करना आवश्यक है, परंतु इनके मूल सिद्धांत–**नैतिक शासन, पारिस्थितिक संतुलन, न्यायसंगत व्यापार, विकेन्द्रीकृत प्रशासन और नैतिक संपन्नता**–नीतियों एवं व्यवहारों में नवाचार की प्रेरणा बन सकते हैं। भारत के प्राचीन आर्थिक ज्ञान की पुनः खोज कोई अतीत-निष्ठालु भावुकता नहीं है; यह ***भविष्य के श्रेष्ठ निर्माण*** हेतु ***अतीत से शिक्षण*** की एक विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शी पहल है।

8. वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन: नवाचार और वैश्विक नेतृत्व

आधुनिक भारतीय आर्थिक चिंतन एक गहन परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, जो देश की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि, डिजिटल प्रगति और वैश्विक नेतृत्व की आकांक्षाओं से प्रेरित है। यह अब केवल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या औद्योगिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें समावेशी विकास, तकनीकी सशक्तिकरण, पर्यावरणीय स्थिरता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग जैसे पहलुओं को भी प्राथमिकता दी जा रही है। यह दृष्टिकोण इस विश्वास को दर्शाता है कि भारत न केवल वैश्विक अर्थव्यवस्था का हिस्सा है, बल्कि वह

Scanned with OKEN Scanner

उसकी दिशा तय करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसी सोच के केंद्र मे भारत का **5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था** बनने का लक्ष्य, जो नवाचार, निवे बुनियादी ढांचे और समावेशिता पर आधारित है।

8.1 G20 की अध्यक्षता

भारत की G20 अध्यक्षता (2023) उसके आर्थिक कूटनीति और वैश्विक प्रभाव का ऐतिहासिक क्षण था। देशभर में आयोजित 200 से अधिक बैठकों और दिल्ली में सफ शिखर सम्मेलन के ज़रिए भारत ने डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना, समावेशी विका महिला नेतृत्व और जलवायु कार्रवाई जैसे विषयों को वैश्विक आर्थिक एजेंडे में प्रमुख से स्थान दिलाया। *"वसुधैव कुटुंबकम्"* या *"एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य"* थीम के तहत भारत ने मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की अवधारणा को आगे बढ़ाया, जि व्यक्ति और पर्यावरण को आर्थिक नीतियों के केंद्र में रखा गया।

भारत ने इस मंच का उपयोग **वैश्विक दक्षिण** (Global South)—य विकासशील देशों—की आवाज़ बनने के लिए किया, जिन्हें अक्सर वैश्विक निर्ण निर्माण प्रक्रियाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। जियोपॉलिटिकल तनावों बावजूद G20 घोषणापत्र पर सहमति बनाकर भारत ने यह सिद्ध कर दिया कि वह वैश्वि मंचों पर संवाद और समाधान को संतुलित रूप से आगे बढ़ा सकता है। इस नेतृत्व भारत की आर्थिक साख को बढ़ाया और दिखाया कि एक उभरती अर्थव्यवस्था कि तरह वैश्विक दिशा को प्रभावित कर सकती है।

8.2 डिजिटल इंडिया और UPI: नई अर्थव्यवस्था की रीढ़

वर्तमान भारतीय आर्थिक दृष्टिकोण का एक और मुख्य स्तंभ है **डिजिटल इंडिया अभियान**, जिसे 2015 में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य तकनीक के माध्यम से शासन, सेवाओं और आर्थिक भागीदारी को आसान और पारदर्शी बनाना है। डिजिटल इंडिया ने न केवल इंटरनेट की पहुँच को बढ़ाया है, बल्कि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में डिजिटल मंचों के उपयोग को भी प्रोत्साहित किया है।

Source: https://dic.gov.

इस अभियान की सबसे क्रांतिकारी उपलब्धि रही है **यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस** (UPI)। भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI) द्वारा विकसित यह रीयल-टाइम भुगतान प्रणाली अब हर महीने **12 अरब से अधिक लेन-देन** कर रही है। UPI ने न केवल लेन-देन को त्वरित और सुलभ बनाया, बल्कि करोड़ों लोगों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ दिया है और छोटे व्यापारों को सशक्त किया है। भारत का डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना मॉडल—जैसे आधार, डिजिलॉकर और CoWIN—दुनिया भर में अनुकरणीय बन गया है। यह दिखाता है कि कैसे राज्य-प्रेरित डिजिटल प्रणाली आर्थिक समावेश, नवाचार और लचीलापन का माध्यम बन सकती है।

8.3 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था: रणनीति और चुनौतियाँ

भारत को 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाना मात्र एक आंकड़ा नहीं, बल्कि एक समग्र रणनीति का हिस्सा है जो देश को वैश्विक निर्माण, नवाचार और ज्ञान-आधारित केंद्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार *मेक इन इंडिया, राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन, निर्यात बढ़ोतरी, और व्यवसाय करने में सुगमता* जैसी पहलों पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

इसके साथ ही **आत्मनिर्भर भारत अभियान**, जिसे कोविड-19 महामारी के बाद शुरू किया गया था, घरेलू उत्पादन और रणनीतिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की दिशा में एक ठोस प्रयास है। *उत्पादन आधारित प्रोत्साहन (PLI)* योजनाएँ इसका एक प्रमुख उदाहरण हैं। हालांकि, इस लक्ष्य तक पहुँचना आसान नहीं है। *बेरोज़गारी, महंगाई, शिक्षा की गुणवत्ता, कौशल विकास और पर्यावरणीय संतुलन* जैसे मुद्दों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए सरकार नई शिक्षा नीति (NEP 2020), श्रम सुधार और हरित ऊर्जा निवेश जैसे क्षेत्रों में सक्रिय कार्य कर रही है।

8.4 संतुलित और नैतिक आर्थिक ढांचा

वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि यह *विकास और समानता, तकनीक और परंपरा, वैश्वीकरण और आत्मनिर्भरता* के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है। यह न तो पूरी तरह से राज्य-नियंत्रित मॉडल है और न ही केवल बाजार आधारित। बल्कि यह एक **मिश्रित विकास मॉडल** है, जिसमें सार्वजनिक निवेश, निजी नवाचार, वैश्विक भागीदारी और डिजिटल तकनीक सभी मिलकर विकास को आगे बढ़ा रहे हैं।

Scanned with OKEN Scanner

9. निष्कर्ष

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतवर्ष में समाज की भौतिक जीवन-व्यवस्था एक गहन रूप से समन्वित, नैतिक तथा व्यावहारिक ढाँचे पर आधारित थी, जो आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्शों के साथ पूर्णतः समरस थी। जहाँ आधुनिक आर्थिक प्रतिमान प्रायः भौतिक प्रगति को मूल्यों से पृथक कर देते हैं, वहीं प्राचीन भारतीय मनीषियों ने–**अर्थशास्त्र**, **मनुस्मृति**, **उपनिषद्**, **शुक्रनीति** एवं अन्य ग्रंथों के माध्यम से–ऐसी आर्थिक दृष्टि प्रस्तुत की जिसमें अर्थ का स्वरूप **धर्म**, **लोकसंग्रह** (सामूहिक कल्याण) एवं **पार्यावरणीय संतुलन** से अविच्छिन्न था। इस ग्रंथ में कृषि, उद्योग, वाणिज्य एवं बैंकिंग जैसे आर्थिक क्षेत्रों के साथ-साथ कारीगरों, श्रमिकों, व्यापारियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिकाओं का अनुशीलन किया गया है। मुद्रा-प्रणाली, राज्य की नियामक व्यवस्थाएँ तथा लोकोक्तियों एवं सूक्तियों में निहित सांस्कृतिक मूल्य, सभी इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था अनुशासन, नैतिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित थी। आर्थिक संस्थाओं की रचना केवल उत्पादन या संपत्ति के वितरण हेतु नहीं, अपितु सामाजिक समरसता की रक्षा एवं निर्बलों के संरक्षण हेतु की गई थी।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में आर्थिक क्रियाकलापों को कभी भी पृथक स्वार्थ की पूर्ति का लक्ष्य नहीं माना गया। **अर्थ (धन)** की उपादेयता स्वीकृत थी, परन्तु वह तभी ग्राह्य थी जब वह **धर्म** के अनुकूल अर्जित हो तथा समाज के **समष्टि-कल्याण** हेतु उपयुक्त रूप में प्रयुक्त हो। **दान**, **सम्यक आजीविका** तथा **अपरिग्रह (संपत्ति का अनासक्त भाव)** केवल दार्शनिक कल्पनाएँ नहीं थीं, अपितु जीवन के व्यवहारिक आचरणों का मार्गदर्शन करने वाले जीवित सिद्धांत थे।

आज जब विश्व आर्थिक विषमता, पर्यावरणीय संकट एवं नैतिक पतन जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा है, तब ये प्राचीन सिद्धांत हमें यह स्मरण कराते हैं कि समृद्धि तभी स्थायी हो सकती है जब वह न्याय, संयम एवं साझा मानवता की भावना द्वारा निर्देशित हो।

अतः यह पुस्तक केवल भारत की आर्थिक विरासत का अनावरण नहीं करता, बल्कि उसे वर्तमान एवं भविष्य के लिए **बोध और प्रेरणा के स्रोत** के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करता है–एक ऐसी विरासत जिसमें अर्थव्यवस्था केवल बाज़ार और लाभ तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसका उद्देश्य था नैतिक ध्येय, सामाजिक कल्याण और प्रकृति के साथ संतुलन।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Kautilya (Chanakya), *Arthashastra*, Penguin Classics (translated by L.N. Rangarajan), 1992.
2. Ajit K. Dasgupta, *A History of Indian Economic Thought*, Routledge, 1993 (reprinted 2015).
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), *"Introduction to Indian Knowledge System"*, PHI learning private ltd.
4. R.S. Sharma, *Material Culture and Social Formations in Ancient India*, Macmillan Publishers India, 1983.
5. D.D. Kosambi, *An Introduction to the Study of Indian History*, Popular Prakashan, 1956.
6. Debiprasad Chattopadhyaya, *Lokayata: A Study in Ancient Indian Materialism*, People's Publishing House, 1959.
7. S. Kalyanaraman, *Economic History of Ancient India: Artha, 'Wealth' of Vedic Rastram*, CreateSpace Independent Publishing Platform, 2016.
8. O.P. Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.
9. Manu. (2004). *The Law Code of Manu* (P. Olivelle, Trans.). Oxford University Press. *(Original work ca. 2nd century BCE – 3rd century CE)*
10. Olivelle, P. (Ed. & Trans.). (2005). *Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Mānava-Dharmaśāstra*. Oxford University Press.
11. Cowell, E.B. (Ed.). (1895). *The Jataka or Stories of the Buddha's Former Births* (Vols. I–VI). Cambridge University Press.
12. Doniger, W., & Smith, B.K. (Trans.). (1991). *The Laws of Manu*. Penguin Books.

Scanned with OKEN Scanner

13. Griffith, R.T.H. (Trans.). (1896). *The Hymns of the Rigveda*. Evinity Publishing Inc.

14. Kosambi, D.D. (1956). *An Introduction to the Study of Indian History*. Popular Prakashan.

15. Sharma, R.S. (1983). *Perspectives in Social and Economic History of Early India*. Munshiram Manoharlal.

16. Gupta, B.L. (2023). *Ancient Indian Economics Thoughts and Systems*. Kitabwale

17. Jain, A.R. (2020). *Chanakya Father of Modern Economics*. Kitabwale

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. 'अर्थशास्त्र' में 'पण्याध्यक्ष' का कर्तव्य क्या था ?
   - क. कर संग्रहण
   - ख. सेना भर्ती
   - ग. बाज़ार नियंत्रण
   - घ. मन्दिर प्रबन्धन

2. अर्थशास्त्र का व्यापक उद्देश्य क्या होता है ?
   - क. राजनैतिक शासन
   - ख. आध्यात्मिक मुक्ति
   - ग. संसाधनों का प्रबंधन और धन का वितरण
   - घ. विधिक प्रणाली

3. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन किसमें गहराई से निहित है ?
   - क. प्रौद्योगिकी और युद्ध
   - ख. कला और साहित्य
   - ग. धर्म, दर्शन और राजनीति
   - घ. व्यापार मार्ग और साम्राज्य

4. प्राचीन भारत में राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर कौन-सा ग्रंथ एक व्यापक ग्रन्थ माना जाता है ?
   - क. मनुस्मृति
   - ख. रामायण
   - ग. अर्थशास्त्र
   - घ. नारद स्मृति

Scanned with OKEN Scanner

5. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन को आधुनिक अर्थशास्त्र से क्या अलग करता है?
   क. सैन्य रणनीति पर ध्यान
   ख. मात्रात्मक मॉडल
   ग. समग्र और नैतिक दृष्टिकोण
   घ. केन्द्रीय बैंक प्रणाली

6. चार पुरुषार्थों में से धन से सम्बन्धित मुख्य पुरुषार्थ कौन-सा है?
   क. धर्म
   ख. अर्थ
   ग. काम
   घ. मोक्ष

7. प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार आर्थिक गतिविधियों का उद्देश्य क्या होना चाहिए?
   क. लाभ और विस्तार
   ख. राज्य नियंत्रण और नियमन
   ग. सामाजिक समरसता और सामूहिक कल्याण
   घ. सैन्य वर्चस्व

8. "लोकसंग्रह" का क्या महत्त्व है?
   क. व्यक्तिगत आत्मबोध
   ख. कलात्मक अभिव्यक्ति
   ग. सामूहिक कल्याण
   घ. राजनीतिक अधिकार

9. यजुर्वेद में व्यापार के सिद्धांत को किस शब्द से व्यक्त किया गया है?
   क. मोक्ष
   ख. विनिमय
   ग. यज्ञ
   घ. दण्ड

10. निम्न में से कौन-सा प्राचीन भारतीय नगर प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में वर्णित नहीं है?
   क. पाटलिपुत्र
   ख. उज्जैन
   ग. तक्षशिला
   घ. हड़प्पा

11. अथर्ववेद की "चरितम्-उत्थितम्" उक्ति किस पर बल देती है?
   क. रणनीतिक युद्ध
   ख. व्यापार में शिष्ट आचरण
   ग. राजगद्दी उत्तराधिकार
   घ. व्यापारियों का प्रवास

12. "सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः" से क्या संकेत मिलता है?
   क. धन सुख का मूल है
   ख. सुख धर्म से उत्पन्न होता है, और धर्म अर्थ से
   ग. अर्थ का कोई महत्त्व नहीं
   घ. धर्म सीधे मोक्ष की ओर ले जाता है

13. ऋग्वेद के अनुसार धन कैसे प्राप्त किया जाना चाहिए?
   क. उत्तराधिकार द्वारा
   ख. विजय द्वारा
   ग. धर्मपूर्वक और सत्यपूर्वक
   घ. दैवी हस्तक्षेप द्वारा

14. वैदिक काल में पशुपालन से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बदलाव किससे चिन्हित होता है?
   क. चीन से व्यापार
   ख. राज्यों की स्थापना
   ग. भूमि को सम्पत्ति के रूप में महत्व
   घ. मनुस्मृति की रचना

Scanned with OKEN Scanner

15. 'अर्थ' की अवधारणा किस काल में उभरी?
    क. उपनिषदिक
    ख. प्रारम्भिक वैदिक
    ग. बौद्ध
    घ. मौर्य

16. उपनिषदों में किस आश्रम में आर्थिक गतिविधियों पर बल दिया गया है?
    क. संन्यास
    ख. वानप्रस्थ
    ग. गृहस्थ
    घ. ब्रह्मचर्य

17. मनुस्मृति विशेष रूप से किसका विवरण देती है?
    क. बुद्ध के उपदेश
    ख. कृषि तकनीक
    ग. कर्तव्य, कानून और सम्पत्ति अधिकार
    घ. समुद्री व्यापार नीति

18. आर्थिक कार्यों जैसे कृषि और व्यापार के लिए कौन-सा वर्ण उत्तरदायी था?
    क. ब्राह्मण
    ख. क्षत्रिय
    ग. वैश्य
    घ. शूद्र

19. प्राचीन भारत में पुनर्वितरण द्वारा आर्थिक न्याय को किसने बढ़ावा दिया?
    क. श्रेणियाँ
    ख. भिक्षा और दान
    ग. ऋण बैंकिंग
    घ. मुक्त व्यापार क्षेत्र

20. प्राचीन भारतीय आर्थिक ग्रंथों में सूदखोरी को कैसे देखा गया?
    क. व्यापारियों के लिए प्रोत्साहित
    ख. राजकीय अनुज्ञा के अन्तर्गत स्वीकार्य
    ग. निन्दनीय
    घ. युद्ध के वित्तपोषण हेतु आवश्यक

21. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में धार्मिक संस्थाओं की भूमिका क्या थी?
    क. कर संग्रह
    ख. दान के माध्यम से पुनर्वितरण
    ग. निर्यात प्रबंधन
    घ. बैंकिंग नियम

22. जैन आर्थिक विचारधारा के अनुसार क्या दृष्टिकोण था?
    क. बिना प्रतिबंध के भौतिक धन को प्रोत्साहन
    ख. राज्य द्वारा नियंत्रित व्यापार
    ग. न्यूनतम हिंसा के साथ नैतिक पूँजीवाद
    घ. सभी व्यापारिक गतिविधियों पर प्रतिबंध

23. बौद्ध आर्थिक चिन्तन में गृहस्थों के लिए कौन-सा मार्ग सुझाया गया है?
    क. आत्मत्याग और एकांत
    ख. हर मूल्य पर धन
    ग. मध्यम मार्ग: ईमानदार और संयमित धन
    घ. सम्पत्ति का पूर्ण त्याग

24. जैन दर्शन में "अपरिग्रह" का क्या अर्थ है?
    क. धनार्जन
    ख. दान
    ग. गैर-संचय (अस्वामित्व)
    घ. कर व्यवस्था

Scanned with OKEN Scanner

25. वैदिक आर्थिक प्रणाली में धन को कैसे प्रयोग में लाना चाहिए?
 क. राजाओं के अधीन केन्द्रित
 ख. केवल यज्ञों में प्रयोग
 ग. धर्मपूर्वक संचय और उदारतापूर्वक व्यय
 घ. सुरक्षा हेतु संचय

26. आधुनिक प्रणालियों की तुलना में प्राचीन भारतीय आर्थिक दर्शन की एक विशिष्ट विशेषता क्या है?
 क. सिक्कों का प्रयोग
 ख. बाज़ार आधारित प्रतिस्पर्धा
 ग. नैतिकता, आध्यात्मिकता और अर्थनीति का समन्वय
 घ. विदेशी व्यापार पर निर्भरता

27. 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रूप में परम्परागत रूप से किसे माना जाता है?
 क. मनु
 ख. शुक्राचार्य
 ग. कौटिल्य
 घ. बुद्ध

28. 'अर्थशास्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
 क. धर्म का विज्ञान
 ख. ध्यान की कला
 ग. धन और राज्य संचालन का विज्ञान
 घ. आचार संहिता

29. कौटिल्य के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ कौन-सा है?
 क. धर्म
 ख. अर्थ
 ग. काम
 घ. मोक्ष

30. 'अर्थशास्त्र' की पाण्डुलिपि का पुनः खोज वर्ष कौन-सा था?
 क. 1856
 ख. 1947
 ग. 1905
 घ. 2001

31. "अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति" का क्या अर्थ है?
 क. नैतिक धन सदा स्थायी रहता है
 ख. धन दान करना चाहिए
 ग. अन्याय से प्राप्त धन दस वर्षों में नष्ट हो जाता है
 घ. धन दिव्य होता है

32. 'अर्थशास्त्र' के आर्थिक ढाँचे में राजा की भूमिका क्या थी?
 क. धार्मिक प्रमुख
 ख. मुख्य आर्थिक योजनाकार एवं प्रशासक
 ग. दार्शनिक
 घ. केवल सैन्य सेनापति

33. निम्नलिखित में से किस आर्थिक क्षेत्र को 'अर्थशास्त्र' में सीधे नियंत्रित नहीं किया गया था?
 क. कृषि
 ख. व्यापार
 ग. खनन
 घ. अंतरिक्ष अन्वेषण

34. 'अर्थशास्त्र' में 'बलि' का क्या तात्पर्य है?
 क. राजकीय कर
 ख. भूमि कर
 ग. पुजारियों को दिया गया उपहार
 घ. सैनिक कर

Scanned with OKEN Scanner

35. कठिन समय में कौटिल्य किस प्रकार के कराधान की सिफारिश करते थे?

क. प्रगतिशील कराधान

ख. उदार कराधान

ग. कर नहीं

घ. स्थिर कराधान

36. भारत के प्राचीन आर्थिक चिन्तन से मिलने वाला व्यापक सन्देश क्या है?

क. प्रौद्योगिकी को नैतिकता का स्थान लेना चाहिए

ख. अल्पकालिक लाभ ही प्रमुख हैं

ग. नैतिकता और स्थायित्व दीर्घकालिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं

घ. व्यापार को सीमित करना चाहिए

37. शुक्राचार्य के अनुसार "वार्ता" में क्या सम्मिलित होता है?

क. सैन्य रणनीति

ख. धार्मिक अनुष्ठान

ग. ऋण, कृषि, व्यापार और गौ-संरक्षण

घ. योगाभ्यास

38. बौद्ध आर्थिक नैतिकता के अनुसार किन व्यवसायों को हतोत्साहित किया गया?

क. कृषि

ख. शस्त्र व्यापार और दासता

ग. शिक्षण

घ. सिलाई

39. बौद्ध धर्म में "सम्मा आजीव" का क्या अर्थ है?

क. सही ध्यान

ख. सही वाक्

ग. सही आजीविका

घ. सही प्रयास

40. जैन धर्म में आर्थिक जीवन को कौन-सा सिद्धांत निर्देशित करता था?

क. अहिंसा और अपरिग्रह

ख. अधिकतम लाभ

ग. विदेशी व्यापार

घ. श्रमिक शोषण

41. चाणक्य के अनुसार मनुष्य को किससे प्रेरणा मिलती है?

क. धर्म

ख. ध्यान

ग. इच्छाएँ

घ. पुनर्जन्म

42. शुक्रनीति में 'अनर्थ' का क्या अर्थ है?

क. धन की प्रचुरता

ख. धर्मसम्मत आय

ग. विपत्ति

घ. सैन्य सम्पत्ति

43. 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि कौन-सी थी?

क. धातुकर्म

ख. व्यापार

ग. कृषि

घ. मनोरंजन

44. 'अर्थशास्त्र' में सिंचाई व्यवस्था के लिए क्या उपाय सुझाया गया है?

क. निजीकरण

ख. राज्य द्वारा प्रबंधन और समर्थन

ग. मठों का नियंत्रण

घ. उपेक्षा

Scanned with OKEN Scanner

45. किस ग्रंथ में वर्ण-आधारित श्रम विभाजन का वर्णन है?

क. अर्थशास्त्र

ख. मनुस्मृति

ग. शुक्रनीति

घ. जातक कथाएँ

46. 'धर्मशास्त्र' में 'स्त्रीधन' क्या था?

क. पुरुषों द्वारा प्राप्त दहेज

ख. महिलाओं की स्वामित्व वाली सम्पत्ति

ग. मन्दिरों को दान

घ. महिलाओं पर कर

47. धर्मशास्त्र के अनुसार कृषि उपज में राज्य का सामान्य हिस्सा कितना था?

क. एक-चौथाई

ख. एक-षष्ठांश

ग. आधा

घ. सम्पूर्ण उपज

48. बौद्ध संघीय नियमों के अनुसार आर्थिक जीवन में क्या नियंत्रित होता था?

क. कृषि तकनीक

ख. दान और सामुदायिक उपभोग

ग. सैन्य व्यय

घ. कर प्रणाली

49. मनुस्मृति में धन के सन्दर्भ में कौन-सी नैतिक चिन्ता व्यक्त की गई है?

क. अत्यधिक संचय को प्रोत्साहन

ख. अमर्यादित धन (अपराज अर्थ) धार्मिक उपयोग के योग्य नहीं है

ग. धन केवल राजा को ही मिलना चाहिए

घ. महिलाओं को धन का स्वामित्व नहीं होना चाहिए

50. 'अर्थशास्त्र' के अनुसार वेतन निर्धारण का क्या दृष्टिकोण था?

क. सभी के लिए समान वेतन

ख. कौशल और जाति के अनुसार

ग. केवल न्यूनतम वेतन

घ. यादृच्छिक निर्धारण

51. अर्थशास्त्र में निम्नलिखित में से कौन-कौन से व्यवसाय विशेष रूप से उल्लेखित हैं?

क. सॉफ़्टवेयर अभियंता

ख. बुनकर, राजमिस्त्री, सोनार, चर्मकार

ग. केवल पुरोहित और सन्यासी

घ. कवि और ज्योतिषी

52. प्राचीन भारत में कपास तथा रेशमी वस्त्र किस व्यवसाय द्वारा बनाए जाते थे?

क. राजमिस्त्री

ख. बुनकर

ग. सोनार

घ. चर्मकार

53. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बुनकरों के संदर्भ में अधिकारियों की क्या भूमिका थी?

क. न्यायधीश नियुक्त करना

ख. कर व्यवस्था की देखरेख

ग. उनके कार्य की निगरानी और गुणवत्ता सुनिश्चित करना

घ. व्यापार में संलग्न होना

54. निम्नलिखित में से कौन से श्रमिक इमारतों और पुलों के निर्माण के लिए उत्तरदायी थे?

क. राजमिस्त्री

ख. लोहार

ग. बढ़ई

घ. सोनार

Scanned with OKEN Scanner

55. अर्थशास्त्र के अनुसार राजमिस्त्रियों को वेतन किस आधार पर मिलता था?

क. राजा की इच्छा पर

ख. निश्चित वार्षिक वेतन

ग. कार्य की गुणवत्ता और परिमाण के आधार पर

घ. उनकी जाति स्थिति पर

56. कृषि और दैनिक उपयोग में किस कारीगर के औजार आवश्यक होते थे?

क. सोनार

ख. चर्मकार

ग. लोहार

घ. बुनकर

57. जूते, पेटी, थैले आदि वस्तुएँ बनाने की ज़िम्मेदारी किसकी थी?

क. बढ़ई

ख. चर्मकार

ग. सोनार

घ. व्यापारी

58. समाज में धोबी (वाशकर्मी) की भूमिका क्या थी?

क. मंदिरों की देखरेख

ख. नृत्य करना

ग. वस्त्रों की सफ़ाई

घ. रेशमी वस्त्र बुनना

59. धोबियों का कार्य विशेष रूप से किस वर्ग के लिए महत्वपूर्ण था?

क. कृषक वर्ग

ख. किसान

ग. निम्न जातियाँ

घ. उच्च वर्ग

60. निर्माण और ईंधन हेतु लकड़ी इकट्ठा करने का कार्य कौन करता था?

क. ग्वाले

ख. लकड़हारे

ग. चरवाहे

घ. मछुआरे

61. सोनार का व्यवसाय किन कार्यों में महत्वपूर्ण था?

क. माटी के बर्तन बनाना

ख. राजनीतिक प्रशासन

ग. धार्मिक अनुष्ठान और सांस्कृतिक जीवन

घ. धातु निर्माण

62. प्राचीन भारतीय समाज में शराब बनाने वाले कौन कहलाते थे?

क. वैद्य

ख. चर्मकार

ग. कालबारा

घ. सूत्रधार

63. ग्वाले मुख्यतः किस कार्य से संबंधित थे?

क. कर संग्रह

ख. मंदिर प्रबंधन

ग. दुग्ध हेतु गायों का पालन

घ. रेशमी वस्त्र बनाना

64. चरवाहे मुख्यतः किसकी देखभाल करते थे?

क. गाय

ख. मछली

ग. बकरी व पशुधन

घ. मुर्गियाँ

Scanned with OKEN Scanner

65. अर्थशास्त्र में मान्यता प्राप्त होने के बावजूद किस वर्ग का जीवन कठिन होता था?

क. वैद्य

ख. दास

ग. व्यापारी

घ. कलाकार

66. किस वर्ग के श्रमिक सभी क्षेत्रों में शारीरिक श्रम के आधार थे?

क. व्यापारी

ख. वैद्य

ग. श्रमिक

घ. कलाकार

67. नदियों और समुद्रों से आवश्यक आहार कौन उपलब्ध कराता था?

क. ग्वाले

ख. मछुआरे

ग. बुनकर

घ. राजमिस्त्री

68. प्राचीन समाज में वैद्य की भूमिका क्या थी?

क. मनोरंजन

ख. धार्मिक उपदेश

ग. स्वास्थ्य सेवा

घ. सैनिक सेवा

69. सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यक्रमों का संचालन कौन करता था?

क. कलाकार

ख. चर्मकार

ग. व्यापारी

घ. वैद्य

70. अनाज, वस्त्र, मसालों का व्यापार किसके द्वारा किया जाता था?

क. मछुआरे

ख. राजमिस्त्री

ग. व्यापारी

घ. दास

71. एक कहावत के अनुसार भारत में सबसे श्रेष्ठ व्यवसाय क्या माना जाता था?

क. व्यापार

ख. मनोरंजन

ग. कृषि

घ. सेवा

72. भारतीय कहावत के अनुसार अंतिम उपाय के रूप में कौन सा व्यवसाय चुना जाता था?

क. व्यापार

ख. कृषि

ग. सेवा

घ. भिक्षावृत्ति

73. वस्त्र और धातु शिल्प किस क्षेत्र का भाग माने जाते थे?

क. कृषि

ख. व्यापार

ग. उद्योग

घ. बैंकिंग

74. सूत्राध्यक्ष की भूमिका क्या थी?

क. चिकित्सकीय कार्य करना

ख. वस्त्र उद्योग की निगरानी

ग. बैंकिंग संचालन

घ. पशुपालन

Scanned with OKEN Scanner

75. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में 'विनिमय' की श्रेणी में कौन सी दो गतिविधियाँ आती थीं?

क. कृषि और उद्योग

ख. कृषि और बैंकिंग

ग. व्यापार और बैंकिंग

घ. बुनाई और खेती

76. आर्थिक मामलों में राज्य की मुख्य भूमिका क्या थी?

क. प्रत्यक्ष उत्पादन

ख. सैन्य विस्तार

ग. निगरानी और नियमन

घ. धार्मिक उपदेश

77. प्राचीन भारत की मौद्रिक प्रणाली का उद्देश्य क्या था?

क. विदेशी व्यापार को बढ़ावा देना

ख. केवल कर संग्रह करना

ग. राज्य समृद्धि और सामाजिक धन का समर्थन

घ. विनिमय प्रणाली को प्रोत्साहन देना

78. निम्नलिखित में से कौन सी धातु पन मुद्रा का भाग नहीं थी?

क. चाँदी

ख. सोना

ग. ताँबा

घ. लोहा

79. एक मानक पन मुद्रा का वज़न कितने माषा होता था?

क. 12

ख. 16

ग. 20

घ. 10

80. पण मुद्रा की रचना कितने माषा में थी?

क. 8 चाँदी, 6 ताँबा, 2 लोहा

ख. 10 चाँदी, 5 ताँबा, 1 लोहा

ग. 11 चाँदी, 4 ताँबा, 1 लोहा

घ. 12 चाँदी, 3 ताँबा, 1 लोहा

81. प्रशासन में मुद्रा की भूमिका क्या थी?

क. केवल धार्मिक दान हेतु

ख. केवल युद्ध में उपयोग

ग. कर संग्रह, वेतन और कार्य

घ. केवल चीन के साथ व्यापार

82. प्राचीन भारत में सिक्के बनाने और धातु खनन पर किसका नियंत्रण था?

क. स्थानीय व्यापारी

ख. विदेशी व्यापारी

ग. राज्य

घ. धार्मिक संस्थाएँ

83. सिक्कों में धातुओं का मिश्रण क्यों किया जाता था?

क. आकर्षक दिखाने के लिए

ख. वज़न कम करने हेतु

ग. प्रामाणिकता सुनिश्चित करने व धोखाधड़ी रोकने हेतु

घ. उत्पादन बढ़ाने हेतु

84. निम्नलिखित में से कौन सी मुद्रा अल्प-मूल्य की थी जो छोटे लेन-देन में प्रयुक्त होती थी?

क. रुपया

ख. आना

ग. कौड़ी

घ. पन

Scanned with OKEN Scanner

85. पण के बाद कौन सी मुद्रा प्रचलन में आई?

क. दिनार

ख. आना

ग. कौड़ी

घ. पैसा

86. "चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये" इस कहावत से क्या अभिप्रेत है?

क. धार्मिक भक्ति

ख. धन के प्रति उदासीनता

ग. प्रकृति से प्रेम

घ. धन के प्रति अत्यधिक लगाव

87. "सोलह आने सच बोल रहा हूँ" का क्या अर्थ है?

क. अधूरा सत्य बोलना

ख. मितव्ययी होना

ग. पूर्ण सत्य बोलना

घ. सहायता से इनकार करना

88. दशमलव प्रणाली से पहले 1 रुपये में कितने पैसे होते थे?

क. 60 ख. 80

ग. 100 घ. 64

89. प्राचीन मुद्रा व्यवस्था में 1 धेला किसके बराबर था?

क. 2 दमड़ी ख. 3 दमड़ी

ग. 1 कौड़ी घ. 4 कौड़ी

90. सन् 1957 में किस मूल्य प्रणाली ने प्राचीन प्रणाली का स्थान लिया?

क. द्विआधारी प्रणाली

ख. दशमलव आधारित रुपया-पैसा प्रणाली

ग. वस्तु विनिमय प्रणाली

घ. शंख मुद्रा प्रणाली

91. प्राचीन भारत में आर्थिक गतिविधियों का मार्गदर्शन किस सिद्धांत द्वारा होता था?

क. लाभ की अधिकतमता

ख. धर्म (नैतिकता)

ग. अव्यवधान सिद्धांत (Laissez-faire)

घ. सैन्य विजय

92. दान, अपरिग्रह और सम्मा आजीव क्या दर्शाते हैं?

क. औद्योगिक नियम

ख. नैतिक पूँजीवाद

ग. कृषि तकनीक

घ. मुद्रा अवमूल्यन

93. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में किसका दंडात्मक उल्लेख मिलता है?

क. विदेश व्यापार

ख. जमाखोरी

ग. संसाधनों का अत्यधिक दोहन और प्रदूषण

घ. सिक्कों का उपयोग

94. गीता में लोकसंग्रह का अर्थ है:

क. सैन्य विजय

ख. तकनीकी नवाचार

ग. सामूहिक कल्याण

घ. बाज़ार पर एकाधिकार

95. निम्नलिखित में से कौन-सी आधुनिक संस्था प्राचीन विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को प्रतिबिंबित करती है?

क. संसद

ख. पंचायती राज

ग. सर्वोच्च न्यायालय

घ. भारतीय रिज़र्व बैंक

Scanned with OKEN Scanner

96. प्राचीन श्रेणियाँ (श्रेणि) आज किसके तुल्य हैं?

क. राजनीतिक दल

ख. कर विभाग

ग. श्रमिक सहकारी संस्थाएँ और श्रमिक संघ

घ. सैन्य शिविर

97. निम्नलिखित में से कौन भारत की G20 अध्यक्षता के विषय का सबसे अच्छा वर्णन करता है?

क. लचीली रिकवरी

ख. सतत विकास

ग. वसुधैव कुटुंबकम

घ. वैश्विक सहयोग

98. प्राचीन आर्थिक ग्रंथों में निम्नलिखित में से किसको प्रोत्साहित नहीं किया गया?

क. उचित पारिश्रमिक

ख. कौशल आधारित भूमिकाएँ

ग. असीमित संपत्ति संचय

घ. श्रमिकों का संरक्षण

99. प्राचीन भारतीय व्यापारी किनके प्रचारक भी थे?

क. रोग

ख. आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य

ग. राजनीतिक प्रचार

घ. उपनिवेशवाद

100. दान और भिक्षा के सिद्धांत से कौन-सा आधुनिक शब्दावली से मेल खाता है?

क. वैश्विक ऊष्मीकरण

ख. क्रिप्टोकरेंसी

ग. परोपकार और कल्याणकारी योजनाएँ

घ. व्यापार प्रतिबंध

उत्तर-दर्शिका

1.	ग	2.	ग	3.	ग
4.	ग	5.	ग	6.	ख
7.	ग	8.	ग	9.	ख
10.	घ	11.	ख	12.	ख
13.	ग	14.	ग	15.	क
16.	ग	17.	ग	18.	ग
19.	ख	20.	ग	21.	ख
22.	ग	23.	ग	24.	ग
25.	ग	26.	ग	27.	ग
28.	ग	29.	ख	30.	ग
31.	ग	32.	ख	33.	घ
34.	ख	35.	क	36.	ग
37.	ग	38.	ख	39.	ग
40.	क	41.	ग	42.	ग
43.	ग	44.	ख	45.	ख
46.	ख	47.	ख	48.	ख
49.	ख	50.	ख	51.	ख
52.	ख	53.	ग	54.	क
55.	ग	56.	ग	57.	ख

Scanned with OKEN Scanner

58. ग	59. घ	60. ख
61. ग	62. ग	63. ग
64. ग	65. ख	66. ग
67. ख	68. ग	69. क
70. ग	71. ग	72. घ
73. ग	74. ख	75. ग
76. ग	77. ग	78. घ
79. ख	80. ग	81. ग
82. ग	83. ग	84. ग
85. घ	86. घ	87. ग
88. घ	89. क	90. ख
91. ख	92. ख	93. ख
94. ग	95. ख	96. ग
97. ग	98. ग	99. ख
100. ग		

Scanned with OKEN Scanner